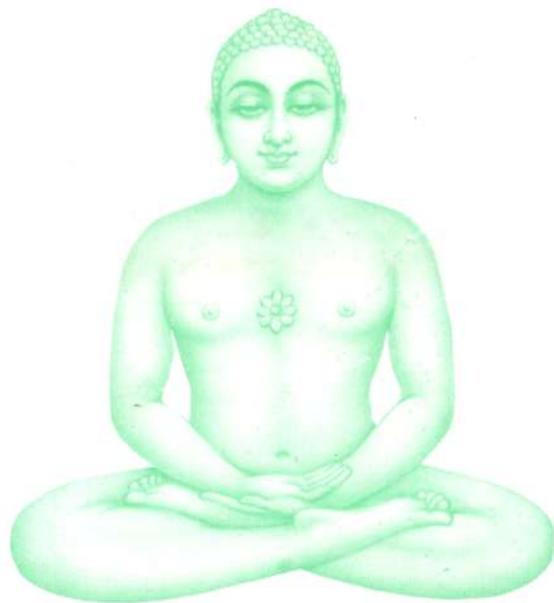


# अमृत तत्त्व की उपलब्धि के हेतु समाधि-मरण



प्रकाशक

धर्मदर्शन विज्ञान शोध संस्थान (बडौत)

धर्म दर्शन सेवा संस्थान (उदयपुर) धर्म दर्शन विज्ञान शोध एवं सेवा संस्थान की  
शाखा : मुजफ्फरनगर, गाजियाबाद, कोटा, सलुम्बर, प्रतापगढ़, मुंबई,

अमेरिका, सागवाडा

(आचार्य श्री कनक नन्दी गुरुदेव संसंघ का आशीर्वाद प्राप्त)

लेखक : वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव

## आमृत तत्व की उल्पन्धि के हेतु समाधि - मरण

पावन प्रसंग

28 वाँ धर्म दर्शन विज्ञान प्रशिक्षण शिविर  
गलियाकोट पुनर्वास कॉलोनी सागवाडा

-: सौजन्य :-

- 1) नरेन्द्र जी स्नोडनिया (सागवाडा)
- 2) मुनि संघ सेवा समिति सकलदिग्मबर जैन समाज सागवाडा  
जिला झूँगरपुर (याज.)
- 3) राजेन्द्र कुमार बजाज, अध्यक्ष युवा परिषद अग्रवाल समाज चौरासी,  
चाकसू (जिला-जयपुर)

-: मुद्रक :-

सीमा प्रिण्टर्स, उदयपुर, फोन : 0294-3295406

-: प्रकाशक :-

धर्मदर्शन विज्ञान शोध संस्थान (बडौत)

धर्म दर्शन सेवा संस्थान (उदयपुर)

धर्म दर्शन विज्ञान शोध एवं सेवा संस्थान (उदयपुर)-शाखा-सागवाडा

लेखक :- वैज्ञानिक धर्मचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव



जैन धर्म में विज्ञान (स्मारिका-वैज्ञानिक संगोष्ठी)  
का विमोचन करते हुए किरीट भाई दफतरी (अध्यक्ष-जैना अमेरिका)



सागवाडा में प्रवचन के अनन्तर स्व-रचित साहित्य न्यायालय के पुस्तकालय  
को लार्यें करते आ, कनकनन्दी तथा स्त्रीकार करते हुए न्यायाधीश  
महेश कुमार गेहता, वकील विजय कुमार तथा अन्य वरिष्ठ वकील

## आमृत तत्त्व की उपलब्धि के हेतु समाधि - मरण

लेखक :- वैज्ञानिक धर्मचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव  
ग्रंथाङ्क-162  
प्रथम संस्करण - 2007  
प्रतियाँ- 1000  
मूल्य - 41/- रुपये (पुनः प्रकाशनार्थे)

मुख्यपृष्ठ एवं मुद्रांकन :- मुनि तीर्थनन्दी

-: मुद्रक शोधन एवं लेखन सहायक:-

मुनि श्रुतनंदी जी, मुनि चिन्मयनन्द जी, मुनि आध्यात्मनन्दी जी, ब्र. सोहनलाल जी देवडा, विपुल जैन, दिनेश पूजारी, मोनम जैन, नेहा जैन, उर्वि कोठारी, सौ. सुलोचना जैन, सौ. प्रेरणा शाह,

### सागवाडा शास्त्र के आजीवन सदस्य एवं कार्यकर्ता

- (1) कीर्ति कुमार जी शाह (2) डॉ. कैलाश चन्द जी सेठ
- (3) विजय कुमार जी सेठ (एडवोकेट)
- (4) नरेन्द्र कुमार जी कोटडिया (बम्बे)
- (5) पवन कुमार गोवाडिया (6) दिनेश कुमार जी खोडनिया
- (7) विमल कुमार जी सेठ (पुर्नवास कालोनी सागवाडा)
- (8) नरेन्द्र जी खोडनिया
- (9) राजेन्द्र कुमार बजाज, अध्यक्ष युवा परिषद अग्रवाल समाज चौरासी, चाकसू (जिला-जयपुर)

-: कार्यकर्ता :-

- (1) दिलीप कुमार जी सेठ (2) फौजमल जी भरडा (3) डॉ. आशीष जी सेठ
- (4) निमेश जी शाह (5) नीतेश जी कोठारी

-: प्राप्ति स्थान :-

धर्म-दर्शन सेवा संस्थान, द्वारा-छोटूलाल चितौडा,  
चंद्रप्रभ दि. जैन मंदिर आयड,  
आयड बस-स्टॉप के पास, उदयपुर-313001(राज.)  
फोन नं:-(0294) 2413565, 5561114

### "आत्महत्या और आध्यात्मिक समाधि में अन्तर है।"

सागवाडा :- आचार्य कनकनंदी ने कहा- आत्महत्या और आत्मशुद्धि में बड़ा अन्तर है। संक्लेश, कषाय के आवेश में आत्म हत्या की जाती है। जबकि समता, संवेग की साधाना से आत्म समाधि या शुद्धि की जाती है। इस विषय में भारतीय आर्थ ग्रंथों के परिप्रेक्ष्य में साधु-संतों के बीच चर्चा करना उचित रहेगा। जान देने और देह विसर्जन में आध्यात्मिक अन्तर है।

आत्म स्वरूप के अनुरूप प्रवृत्ति नहीं करना वस्तुतः आत्म हत्या है। हमारी आयु प्रति समय क्षीणतर होती जा रही है। प्रति समय हमारी सूक्ष्म मृत्यु हो रही है। किसी धर्म, समाज विशेष की यथार्थ मान्यताओं का तलस्पर्शी गहन अध्ययन किये बिना, किसी की आलोचना करना अनुचित है। दूसरों की भावनाओं के साथ खिलवाड़ करना है।

गुरुदेव ने राजस्थान हाई कोर्ट में जनहित याचिका दायर करने वाले निखील सोनी एवं याचिका की ओर से वकालत करने वाले एडवोकेट माधव मिश्रा के तर्कों के समाधान स्वरूप बोल रहे थे। आचार्य श्री ने चुनौती दी है कि याचिका कर्ता से लेकर उच्चतम न्यायालय समाधि (संथारा) के पक्ष - विपक्ष के बारे में चर्चा करें।

दिग्म्बर जैन परम्परा में भगवती आराधना (मरणकण्डीका), मूलाचार जैसे ग्रंथों में समाधि मरण सम्बन्धी विशद व्याख्यान किया गया है। मात्र अन्न-जल त्याग करके कोप-रोष आविष्ट होकर अकाल में देह त्यागना निश्चित रूप में आत्म हत्या है। लेकिन अंग विज्ञान, शकुन विज्ञान एवं आयुर्विज्ञान के निर्देश में किसी अनुभवविद् कुशल मार्गदर्शक आचार्य के सानिध्य में देह के प्रति उपेक्षा (उदासिन) भाव रखते हुए आत्म अनुभुति में ध्यानस्थ, समयोग युक्त होना ही समाधि है।

जैन समाज में अनभिज्ञता की भी कमी नहीं है। जैन दर्शन, विज्ञान, आध्यात्म, साधना पद्धति एवं जीवन मूल्यों को जन मानस तक ठीक-ठीक तरह से पहुंचाने का भागिरथी प्रयास उल्लेखनियरूप से नहीं हुआ है। यही कारण है समाज में भ्रांतियाँ बढ़ रही हैं।

सती प्रथा और समाधि में महा अन्तर है। समाधि में मृत्यु की भी इच्छा नहीं होती है। जीवन और मरण प्रति सम बुद्धि रहती है जब कि सती प्रथा में प्रेमभाव, रागभाव के आवेश में अमूल्य देव दुर्लभ देह का असमय में ही अग्नि में ही होम किया जाता है। दीर्घ कालीन इस प्रथा का भी लगभग वर्तमान में अंत हुआ। जो कि नारी समाज के लिए सुखद हैं। आचार्य श्री सागवाडा में वर्षायोग में संसंघ विराजमान है। इस संदर्भ में परिचर्चा में संतोष प्रद समाधान दे सकते हैं।

जैन धर्म किसी समाज विशेष का नहीं है। याचिकाकर्ता का कर्तव्य था कि वे किसी महान् धर्मचार्य से परामर्श लेते। दुर्भाग्य है कि धर्म को कानून की कसौटी पर खरा साबित किया जा रहा है। जब कि कानून किसी ईश्वरीय शक्ति से रखित नहीं है। साधारण मनुष्य धर्म की समालोचना नहीं कर सकता। धार्मिक मूल्यों, परंपराओं को सच्चाई व अच्छाई की कसौटी पर ही परख लेना चाहिए।

भारत में गरीब, बेरोजगार, किसान वर्ग बड़ी संख्या में आत्म हत्या कर रहे हैं। पशु हत्या, गौवंशा हत्या को सरकार, कानून, जनता बढ़ावा दे रही है। समय की मांग है, राष्ट्र की धरोहर की रक्षा करने के लिए अपनी बुद्धि, शक्ति व समय का प्रयोग करे। आध्यात्मिक जीवन, कानून से ऊपर है। योगवशिष्ठ में समाधि को साधना की अंतिम स्थिति बताया है आत्मा को कर्म से मुक्त करने के लिए कठोर अनुष्ठान की अनिवार्यता है। देश को पराधीनता की बेड़ी से मुक्त करने के लिए वीर सावकर, भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद आदियों ने जो अपने देह की आहुति दी, क्या उन सभी को आत्म हत्यायें माना जाय? अतः संकीर्ण कानून की आड़ में किसी समाज, धर्म, मान्यता विशेष को निशाना बनाना सरासर गलत है। अतः हम पुनः कहना चाहेंगे, समाधि में वैराग्य, समता, सरलता, शांति एवं मनोबल की प्रबलता रहती है। जबकि आत्म हत्या में संक्लेश, हताशा, निराशा एवं कायरता के साथ-साथ तनाव का आवेश रहता है। अतः समाधि आत्म हत्या नहीं, अपितु आत्म शुद्धि की एक व्यक्तिकृत प्रक्रिया है, व्यसन और विलासिता आत्महत्या की धीमी प्रक्रिया है। (उपाध्याधि विद्यानन्दी-संघस्थ-आ. कनकनन्दी )

**संदर्भ:-संथाया (सल्लेखना, समाधि) के विरुद्ध में लोकहित याचिक दायर है उसके प्रतिकार हेतु-  
श्रीमान् / श्रीमति.....**

मेरा मंगलमय धर्मरक्षार्ये शुभाशिर्वाद।

जैन धर्म के संथारे (सल्लेखना, समाधि मरण) को आत्महत्या, सतीप्रथा के समकक्ष मानकर दिलिप सोनी ने एक जनहित याचिका राजस्थान हाइकोर्ट में दायरा किया है, निखिल सोनी की ओर से वकालत करने वाले एडवोकेट माधव मिश्रा है।

जैन धर्म जैसे वस्तु स्वरूप, अनेकान्तात्मक, उदारवादी, सहिष्णु, अहिंसा प्रधान, सर्वजीव हितकारी, सर्वजीव सुखकारी, वैशिक, वैज्ञानिक धर्म के ऊपर ऐसा अनैतिक-अवैधानिक, पक्षपात पूर्ण अज्ञान से युक्त, आक्षेपात्मक प्रहार वस्तुतः उपर्युक्त गुणों के ऊपर ही प्रहार है। अतः सत्य, अहिंसा, उदारता, आध्यात्मिक-आत्मसाधन स्वरूप जैन धर्म की/सत्य धर्म की रक्षा के लिए मेरा सकल जैन समाज (दिग्म्बर, श्वेताम्बर जैन) तथा सत्य ग्राही उदारमना विश्व मानव को आद्वान है कि आप सब स्व-स्व शक्ति-भक्ति के अनुसार सत्य, न्याय के पथ पर चलते हुए इसका निरसन करे एवं संगठित होकर भी व्यापक रूप से प्रतिरोध एवं परिशोधन करे। हम भी संसंघ इसका यथायोग्य निरसन, प्रतिरोध, परिशोधन-प्रवचन, लेखन, साहित्य आदि के माध्यम से कर रहे हैं। हमें भी आप लोग यथायोग्य सम्पूर्ण सहयोग, स्वेच्छा से, सहदय से, मनवचन-काय, समय, श्रम, साधन से करे। जिसके माध्यम से हम जैन धर्म की रक्षा के साथ-साथ आध्यात्मिक संस्कृति की रक्षा कर सके। इसके साथ-साथ इसके माध्यम से जैन एकता के लिए भी भूमिका बनेगी एवं जैन एकता का प्रायोगिक रूप राष्ट्र एवं विश्व स्तर पर होगा जो कि वर्तमान जैन धर्म की, राष्ट्र की, विश्व की आवश्यकता है।

सूचना को प्राप्त करते ही आप लोगों की सकारात्मक प्रतिक्रिया एवं सहयोगात्मक पुरुषार्थ की भावना सहित।

आचार्य कनकनन्दी

## :-विषय सूची :-

प्रकरण-1	समाधि-मरण (संथारा) परम-अहिंसा है न कि आत्म हत्या-सती प्रथा सम निकृष्ट हिंसा । हिंसा का विश्वरूप, आत्मघाती दूसरों के प्राणघातके बिना भी हिंसक, अहिंसा के लिए सल्लेखना,	07
प्रकरण-2	समाधि के योग्य परिस्थिति । समाधि के अतिचार, सल्लेखना के योग्य, साल समाधि काल, वैदिक (हिन्दू)धर्मानुसार समाधि, समाधि के विध्न और निवारण-उपाय, मनुस्मृति में वर्णित सन्यास एवं समाधि-मरण	12 17
प्रकरण-3	मरण के 17 भेद	28
प्रकरण-4	समाधि सम्बन्धी परीक्षा । समाधि सम्बन्धि संघ से विचार विमर्श, समाधि ग्रहण के योग्य काल- हेमन्त ऋतु, अविचार समाधि, निरुद्ध समाधि की विधि, प्रायोगपगमन समाधि मरण,	41
प्रकरण-5	अन्तरंग सल्लेखना	51
प्रकरण-6	समाधि के लिए योग्य वसतिका	54
प्रकरण-7	निर्यापकाचार्य द्वारा क्षपक की सेवा	57
प्रकरण-8	क्षपक का सारण (पेय) । क्षपक की चिकित्सा: शारीरिक एवं आध्यात्मिक, अयोग्य के साथ भी अयोग्य व्यवहार अनुचित	61
प्रकरण-9	निर्यापकत्व के गुण (हितोपदेशी के हानि-लाभ प्रदर्शित गुण) हितोपदेशी के मधुर/स्नेहील गुण, हितोपदेशी के कटुक/ कठोर गुण, हितोपदेशी के दूसरों के दोष न कहने का गुण	69
प्रकरण-10	विविध समाधि मरण के फल	
	82	
प्रकरण-11	क्षपक के अन्तिम संस्कार	86
प्रकरण-12	गीता में वर्णित आत्मा की अमरता तथा समाधि, आदि शंकराचार्य की दृष्टि से आत्म की अमरता तथा समाधि	97
	आचार्य कनकनन्दी जी के विविध शोध-पूर्ण ग्रन्थ	108

## प्रकरण-1

## समाधि-मरण (संथारा) परम-अहिंसा है न कि आत्महत्या-सतीप्रथा सम निकृष्ट हिंसा

जो कुछ बाहर से देखाई देता है यथार्थ उससे भिन्न भी होता है। जैसा कि आकाश का नीला दिखाई देना, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि का आकार छोटा दिखाई देना आदि यथार्थ नहीं है। कृषि के समय कृषक द्वारा जीवों का मरण तथा मछुआरा द्वारा जीवों का मारा जाना, राष्ट्र की रक्षा के लिए सैनिक द्वारा आक्रान्ताओं का मारा जाना तथा आतंकवादी, डाकू, लूटेरे द्वारा निर्दोष व्यक्तिओं का मारा जाना, न्यायाधीश द्वारा दोषी को न्यायोचित दण्ड देना, माता-पिता-गुरुजन द्वारा दोष सुधार के लिए सन्तान एवं शिष्यों को प्रायश्चित्त देना, प्रताडित करना तथा सज्जनों के साथ दुर्व्यवहार करना समान नहीं है। वेश्यागमन, परस्त्री आलिंगन तथा माता-पिता का वात्सल्यमय दुलार, सहलाना एक समान नहीं है। उपर्युक्त उदाहरणों में बाह्य क्रिया में कुछ समानता होने पर भी भाव, उद्देश्य, परिणाम में महान् अन्तर है या पूर्ण विपरीत है। इसी प्रकार आत्म हत्या, सतीप्रथा, पशु-पक्षी-मनुष्य की हत्या या धर्म के नाम पर बल चढ़ाना तथा समाधि-मरण (सल्लेखना, संथारा) में भी जान लेना चाहिए। अन्तर को जान ने के लिए हिंसा एवं अहिंसा का व्यापक, सूक्ष्म यथार्थ परक स्वरूप जानना प्राथमिक विधेय है। यथा-

## हिंसा का विश्वस्वरूप

आत्म-परिणाम हिंसन हेतुत्वात्सर्वमेव हिंसैतत् ।

अनृत-वचनादि-केवलमुदाहतं शिष्य-बोधाय ॥42

जिससे आत्मपरिणामों का हिंसन/हनन होता है वह सब हिंसा ही है। असत्य आदि पापों का कथन प्राथमिक कम बुद्धि वाले शिष्यों को समझाने के लिए उदाहरण के रूप में बताया गया है। प्रमाद से युक्त कषाय से संयुक्त जीव के परिणाम ही हिंसा के लिये कारण होते हैं। असत्य आदि पाप हिंसा की ही अवस्थान्तर है। तथापि शिष्यों को समझाने के लिये असत्य आदि पापों का भी कथन किया जाता है। पन्द्रह प्रकार प्रमादों से आत्मा के परिणाम कलषित होते हैं, मलिन होते हैं इसलिये यह प्रमाद ही हिंसा है।

यत्खलुकषाय-योगात् प्राणानां द्रव्य भावस्तुपाणां ।

व्यपरोपणस्य करणं सुनिश्चित भवति सा हिंसा ॥43

निश्चय से कषाय के योग से द्रव्य भाव रूप प्राणों का हनन होना हिंसा है। निश्चय से कषाय के योग से अर्थात् क्रोध, मान आदि चार कषाय, हास्यादि नोकषाय

के योग से इन्द्रिय श्वासोच्छ्वास, शरीर आदि द्रव्य प्राण तथा ज्ञान आदि भाव प्राणों का हनन करना या उन्हें पीड़ा देना हिंसा है। इन द्रव्य एवं भाव प्राणों का प्रमत्त योग से व्यपरोपण करना, विनाश करना, वियोजन करना निश्चय से हिंसा है।

पाँच इन्द्रिय प्राण, मन, वचन, काय, रूपी तीन बल प्राण, श्वासोच्छ्वास एवं आयु मिलाकर के दस प्राण होते हैं। यथा योन्य दसों प्राण का वियोग करना या उन्हें क्षति पहुँचाना हिंसा है। यहाँ पर परिणाम को प्राधान्यता दी गई है।

### अहिंसा और हिंसा का भावात्मक लक्षण

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति ।  
तेषामेवोत्पतिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः ॥44॥

राग-द्वेष आदि दूषित परिणाम का आत्मा में उत्पन्न नहीं होना निश्चय से अहिंसा है। इसी ही राग-द्वेष आदि दूषित परिणामों का उत्पन्न होना जिनागम में संक्षिप्त से हिंसा कहा है। जिनागम का संक्षेप या सार यह है कि अप्रयत्न रूप से आचरण करना हिंसा है एवं प्रयत्न पूर्वक (विवेक एवं पवित्र भाव) आचरण करना अहिंसा है।

### प्राणघात से ही यत्नाचारी हिंसक नहीं

युक्ताचरणस्य सतो रागोद्यावेशमंतरेणापि ।  
न हि भवतिजातु हिंसा, प्राणव्यपरोपणादेव ॥45॥

जो प्रयत्न आचरण से युक्त है तथा रागादि आवेश से रहित है उससे हिंसा नहीं होती है। युक्त आचरण से सहित मुनीश्वरों के रागादि भावों के आवेश के बिना कदाचित् प्राण व्यपरोपण होने पर भी हिंसा नहीं होती है।

### यत्नाचारी प्राणघात के बिना भी हिंसक

व्युत्थानावस्थायां, रागादीनां वश प्रवृत्तानाम् ।  
प्रियतां जीवो मा वा धावत्यग्रे धूवं हिंसा ॥46॥

राग आदि परिणाम से वशीभूत जीव प्रमाद अवस्था में रहते हुए दूसरे जीव मरे या नहीं मरे अवश्य हिंसक होता है। आचार्य श्री ने इस प्रकरण में कहा कि राग आदि परिणाम से वशीभूत जीवों के तथा प्रमाद से सहित जीवों के आगे-आगे हिंसा दौड़ती रहती है। इसका रहस्य यह है कि वह अवश्यमेव हिंसक होता है अर्थात् त्रस-स्थावर जीवों के प्राणों का हनन करने वाले या नहीं करने वाले भी प्रमादी जीव अवश्य ही हिंसक होते हैं।

### आत्मघाती दूसरों के प्राणघात के बिना भी हिंसक

यस्मात्सक्षायः सन् हन्त्यात्मा-प्रथमात्मनाऽत्मानम् ।  
पश्चाज्जायेते न वा हिंसा प्राण्यंतराणां तु ॥47॥

कषाय से युक्त जीव सर्व प्रथम स्व आत्म स्वरूप की हिंसा करता है। पश्चात् अन्यजीवों की हिंसा हो या नहीं हो सकषाय जीव कषाय के वशीभूत होकर बहिरात्मा होकर अन्तरात्मा का हनन करता है। आत्मवध होने के पश्चात् अन्य जीवों का बध हो भी सकता है नहीं भी हो सकता है।

### प्रमाद योग में नियम से हिंसा होती

हिंसायामविरमणं हिसापरिणमनमपि भवति हिंसा ।

तस्मात् प्रमत्तयोगे प्राण-व्यपरोपणं नित्यम् ॥48॥

हिंसा से प्रतिज्ञापूर्वक विरक्त नहीं होना भी हिंसा ही है। जीव बध से अविरमण हिंसा होती है। हिंसा का परिणाम भी हिंसा ही है। मानसिक हिंसात्मक परिणाम ही हिंसा है। इसलिए प्रमत्त योग से प्राण व्यपरोपण (भाव हिंसा) अवश्य होता है।

विकहा तहा कसाया इंदियणिदा तहेव पणया य ।

चदु चदु पणमेगें होति पमादा हु पण्ण रसा ॥ (गो. सार)

चार प्रकार के विकथा, (स्त्री कथा, चोर कथा, भोजन कथा, राजनीति कथा ) चार प्रकार के कषाय, (क्रोध, मान, माया, लोभ) पाँच प्रकार की इन्द्रियाँ, (स्पर्शन, रसना, ग्राण, चक्षु, कर्ण विषय की आसक्ति) एक निद्रा तथा एक प्रणय (भोगासक्ति) रूप से प्रमाद पंद्रह प्रकार के हैं।

### हिंसा के निमित्तों को ढटाना चाहिये

सूक्ष्माडिपि न खलु हिंसा परवस्तु-निबंधना भवति पुंसः ।

हिंसाऽऽयतन-निवृत्तिः परिणाम-विशुद्धये तदपि कार्या ॥49॥

पर वस्तु के सम्बन्ध से मनुष्य को सूक्ष्म भी हिंसा नहीं लगती है। निश्चय से पर पदार्थ के कारण सूक्ष्म जीव बध का पाप भी जीव को नहीं लगता है। हिंसा आत्म परिणाम से जनित होती है इसलिये हिंसा आत्मनिष्ठ है। इसलिये आत्म परिणाम की विशुद्धि के लिये हिंसा के आयतन स्वरूप छुरी अस्त्र-शस्त्र, सूक्ष्म जीवों से युक्त स्थान का भी त्याग करना चाहिये। अस्त्रादि धारण करने से आत्मस्वभाव में मलीनता आती है। अतः शस्त्रों के समूह को त्याग करके यत्नपूर्वक विचरण करने से आत्म परिणाम में निर्मलता आती है।

### अनिश्चयज्ञ का निश्चय के आश्रय से चारित्र घाती

निश्चयमुबुद्ध्यमानो यो निश्चयतस्तमेव संत्रयते ।

नाशयति करण चरणं स बहिः करणालसो बालः ॥50॥

जो निश्चय को नहीं जानकर निश्चय से उसका ही आश्रय लेता है ऐसा मूर्ख निश्चय से क्रिया रूप चारित्र को अर्थात् व्यवहार चारित्र का नाश कर देता है। आचार्य

श्री ने उसे मूर्ख, आलसी कहा है जो निश्चय व्यवहारात्मक मोक्षमार्ग को नहीं जानकर बाह्य चारित्र का पालन करने में प्रमादी होकर एकान्ततः निश्चय का ही आश्रय लेता है, मानना है। ऐसा व्यक्ति श्रावक चारित्र एवं मुनि रूपी व्यवहार चारित्र का नाश करता है, लोप करता है।

### अहिंसा के लिये सल्लेखना

इयमेकैव समर्था धर्मत्वं मया समं नेतुम् ।

सततमिति भावनीया, पश्चिम-सल्लेखना भक्त्या ॥175॥

मैं अपने धर्म तत्व को अपने साथ एकीकरण करके पर भव में ले जाने के लिये यह सल्लेखना ही निरन्तर समर्थ है। इस प्रकार विचार करके भक्ति से निष्कपट रूप से जीवन के अन्तिम समय में सल्लेखना की भावना भानी चाहिये। मरण के समय में शरीर एवं कषाय को क्षीण करना सल्लेखना है।

### सल्लेखना का पालन

मरणांडवश्वयमहं विधिना सल्लेखनां करिष्यामि ।

इति भावनया परिणतो, नागतमपि पालयेदिदं शीलम् ॥176॥

स्वकीय-परिणाम से पूर्व जन्म में से उपार्जित आयु, इन्द्रिय बल का विनाश कुछ कारण से होता है उसको मरण कहते हैं। मरण को ही यहाँ पर अंत कहा गया है। उस मरण के समय में शरीर, कषाय को क्षीण करना सल्लेखना कहते हैं। शरीर को क्षीण करना बाह्य सल्लेखना है। कषाय को क्षीण करना अभ्यन्तर सल्लेखना है। मरण के अंत में अर्थात् तद्भव मरण मैं शास्त्रोक्त विधि विधान से निष्कपट रूप से सल्लेखना निश्चय से करूँगा। इसी प्रकार पूर्वोक्त प्रकार से भावना से सहित पुरुष को भी आगामी काल संबंधी भी इस शील का पालन होता है। जो ऐसी भावना भाता है उसकी सल्लेखना होती है।

### सल्लेखना आत्महत्या वर्यो नहीं ?

मरणोऽवश्वं भाविनि, कषाय सल्लेखना तनूकरण मात्रे ।

रागादिमंतरेण, व्याप्रियमाणस्य नाऽत्मघातोऽस्ति ॥177॥

प्रश्न- स्वमेव सल्लेखना करके प्राण त्याग करने से स्वकीय आत्मबन्ध होगा जो हिंसा है ?

उत्तर- उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर आचार्य देते हैं कि अवश्यंभावी मरण में राग, द्रेष, मद, मोहादि के बिना की गई सल्लेखना से पुरुष का आत्मघात नहीं है क्योंकि सल्लेखना में कषाय को क्षीण किया जाता है और जहाँ कषाय आवेश नहीं है वहाँ आत्महत्या नहीं होती है। तत्वार्थ सूत्र में कहा है कि प्रमत्त योग से प्राण का व्यपरोपण

करना हिंसा है। जो पुरुष शुद्ध अन्तः करण से सल्लेखना करता है उसका प्रमाद का योग नहीं होता है। सल्लेखना युक्त पुरुष राग, द्रेष, काम, मोह, क्रोधादि में प्रवर्तन नहीं करता है। इसलिए उसका आत्म वध नहीं है। रागादि सहित का अशुभ भाव में प्रवर्तन करने वालों का ही आत्मघात होता है अन्य के नहीं। इसलिए सल्लेखना की भावना करनी चाहिए।

### आत्मघाती कौन ?

या हि कषायऽविष्टः, कुभक-जल-धूमकेतु-विष-शस्त्रैः ।

व्यपरोपयति प्राणान्, न तस्य स्यात्स्यमात्मवधः ॥178॥

रागादि सद्भाव से अशुभ भाव से प्राण विमोचन करने पर सल्लेखना नहीं होती है, इस प्रकार दिग्दर्शन करते हैं।

निश्चय से कषाय से आविष्ट पुरुष कुम्भक, श्वास निरोध, जल, अग्नि, विष, शस्त्र आदि के द्वारा प्राणों को, इन्द्रियों को नाश करता है उस पुरुष के लिए आत्मवध होता है। राग-द्रेष, मोहादि से युक्त पुरुष श्वास रोध से, विषभक्षण से, कूप पतन से, अग्नि प्रवेश से, पर्वत से गिरकर, शस्त्रादि के प्रयोग से आत्म का हनन करता है वह पुरुष आत्मघात पातक को प्राप्त होता है। उसकी सल्लेखना नहीं होती है।

### सल्लेखना अहिंसा भाव

नीयन्तेऽत्र कषायाः हिंसाया हेतवो यतस्तनुताम् ।

सल्लेखनामपि ततः प्रादुराहिंसा प्रसिद्ध्यर्थम् ॥179॥

जिसके कारण से इस सल्लेखना में मुनिश्वरों के द्वारा हिंसा के कारणभूत क्रोधादि कषायों को मन्द किया जाता है इसीलिये सल्लेखना को मुनियों ने अहिंसा की प्रसिद्धि के लिए कहा है। सल्लेखना भी दया के लिए कारण है। वसुनन्दी आचार्य ने कहा भी है-

आगम में रागादि की अनुत्पत्ति को अहिंसा कहा है और उसकी उत्पत्ति को भी जिनेन्द्र भगवान ने हिंसा कहा है। सल्लेखना में प्रवर्तमान पुरुष अवश्य ही मरण आगत होने पर निज आत्म गुण की विराधना नहीं करता हुआ धीरे-धीरे देह को त्याग करता है, जिस प्रकार आत्मगुणों का विनाश नहीं हो तथा कषाय का विनाश हो उसी प्रयत्न करता है। किस प्रकार जो स्वकीय आत्मघात करता है उसकी सल्लेखना हो जाती है ? जो सल्लेखना करता है उसका आत्मघातरूपी पातक नहीं होता है।

### प्रत्यारी को स्वयं मोक्ष मिलता

इति यो ब्रत-रक्षार्थं सतत पालयति सकल-शीलानि ।

वरयति पतिं वरेण स्वयमेव तमुत्सका शिव-पदश्री ॥180॥

इस प्रकार जो पुरुष सतत अहिंसादि व्रत की रक्षा के लिये समस्त सप्तशील को पालन करता है तथा सल्लेखना को करता है वह शिव पदवीश्री को वरण करता है। जिस प्रकार पति इच्छुक कन्या स्वेच्छा से पति को वरण करती है उसी प्रकार शिव श्री/ मोक्ष लक्ष्मी उत्कंठित होकर स्वयमेव व्रत पालक पुरुषों का आदर से वरण करती है।

उपर्युक्त वर्णन से सिद्ध होता है कि समाधि-मरण परम अहिंसा है; क्योंकि अवश्यभावी मरण (जिससे मरण को किसी भी प्रकार से रोका नहीं जा सकता है, टाला नहीं जा सकता है) काल में स्व-पर को किसी भी प्रकार के कष्ट दिये बिना समता पूर्वक मरण को वीरता से वरण किया जाता है। प्राण धातक रोग आदि के अचानक आक्रमण आदि के कारण तो तत्काल (कुछ समयावधि में) समाधि ग्रहण का विधान है अन्यथा क्रमिक रूप से समाधि की साधना 12 वर्षों में की जाती है। समाधि मरण को सल्लेखना (सम्यक्+लेखन) भी कहा जाता है क्योंकि सम्यक् रूप से कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ आदि) तथा शरीर को कृष (क्षीण) किया जाता है। मुख्यतः कषाय के क्षीण के साथ-साथ स्वयमेव शरीर भी क्षीण होता है। अतिवृद्ध, अतिरोग की अवस्था में शरीर क्षीण/दुर्बल होने के कारण चलना-फिरना, उठना-बैठना आदि करने के साथ-साथ शरीर क्षीण/दुर्बल होने के कारण चलना-फिरना, उठना-बैठना आदि करने में पीड़ा होती है, रोग बढ़ जाता है। इसलिए एक योग्य स्थान में एक संथारा (शयन के योग्य चटाई आदि) में समाधि साधक अध्यात्मिक साधना करते हैं। अतिवृद्ध, अतिरोगी अवस्था में गरिष्ठ- अति भोजन करने से अपच आदि के कारण रोग में वृद्धि की संभावना रहती है। इसलिए सुपाच्य-अल्पाहार का विधान है। इस बाह्य (गौण) कारण के साथ-साथ अन्तरंग कारण इन सब का यह है कि स्व-पर को, सूक्ष्म से स्थूल जीवों को बाधा नहीं पहुँचे, भाव में निर्मलता आवे, मरण में पीड़ा न हो। आवश्यकतानुसार नियम की मर्यादा में मरण के अन्तिम दिन तक औषधि-पानी आदि के भी प्रयोग का विधान है। जैन धर्म में अहिंसा, सत्य, अनेकान्त, उदारता, कर्म सिद्धान्त के साथ-साथ 1) आहार दान 2) औषधि दान 3) वसतिका (निवास गृह, धर्मशाला) दान 4) अभय दान (दूसरों की रक्षा) और 5) दया दत्ती (करुणा से रोगी, गरीब आदि की सहायता) का जब विधान है तथा आत्मा के मलीन भाव को ही महान् आत्म हत्या माना गया तब कैसे कोई प्रवृद्ध/ जागरूक वरिष्ठ नागरिक से लेकर साधु-संत तक आत्म हत्या कर सकते हैं? भावात्मक आत्महत्या को जब जैन धर्म में महान् हिंसा/पाप मान कर उससे दूर रहने का विधान है, तब स्वआत्महत्या के साथ-साथ स्व-शरीर हत्या एक सच्चा जैन दूर रहने का विधान है, तब संविधान के अनुसार 18 (21) वर्ष का व्यक्ति स्व-विवेक से कैसे कर सकता है? जब संविधान के अनुसार 18 (21) वर्ष का व्यक्ति स्व-विवेक से अपना धर्म, कर्तव्य का चयन कर सकता है, तब क्या एक वरिष्ठ व्यक्ति (वृद्ध-विवेकी-धर्मात्मा, अहिंसक) पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक आदि समस्याओं के बिना

स्व-विवेक के रहते हुए स्वेच्छा से आध्यात्मिक उन्नति के लिए मरण को वरण करता है तो क्या वह आत्महत्या के लिए करता है ? स्व-पर सम्पूर्ण जीवों से तीन काल सम्बन्धी क्षमा प्रदान एवं क्षमा याचना पूर्वक मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमत से सम्पूर्ण हिंसा से निवृत्ति होने के लिए समाधि को स्वीकार किया जाता है तो समाधि आत्महत्या या सती प्रथा के समान अपराध या सामाजिक बुराई अथवा कानूनी अपराध/ असंविधानैक कैसे हो सकता है ? भारतीय संविधान के अनुसार प्रत्येक नागरिक को धर्म और उपासना की स्वतंत्रता का अधिकार है। यथा-

WE, THE PEOPLE OF INDIA, having solemnly resolved to constitute India into a (SOVEREIGN SOCIALIST SECULAR DEMOCRATIC REPUBLIC and to secure to all its citizens ;

हम भारत के लोग, भारत को एक (सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न समाजवादी पंथ निरपेक्ष, लोकतंत्रात्म गणराज्य) बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :-

JUSTICE, Social, economic and political, LIBERTY of thought, expression, belief, faith and worship, EQUALITY of status and of opportunity, and to promote among them all FRATERNITY assuring the dignity of the individual and the [unity and integrity of the Nation];

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए, तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और [ राष्ट्र की एकता और अखण्डता ] सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए

IN OUR CONSTITUENT ASSEMBLY this twenty-sixth day of November, 1949, do HEREBY ADOPT, ENACT AND GIVE TO OURSELVES THIS CONSTITUTION.

दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई० (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी संवत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

समाधि मरण एवं आत्महत्या में और भी अनेक अन्तर निम्न प्रकार से हैं। समाधि एक धार्मिक एवं आध्यात्मिक प्रक्रिया है, जबकि आत्म हत्या एक भौतिक/ शरीरिक क्रिया है। समाधि सम्पूर्ण रूप से स्वैच्छिक है तो आत्म हत्या के पीच्छे कोई न कोई विवशता या बाध्यता होती है। समाधि का प्रमुख लक्ष्य आत्म-कल्याण, मोक्ष प्राप्ति होता है तो आत्महत्या का मुख्य कारण तात्कालीन कष्टों से पीछा छुड़ाना या दुःखों से पलायनवादी होना है। समाधि में अवश्यभावी मरण के समय में भोजन-पानी का त्याग शक्ति के अनुसार स्वैच्छिक होता है तो आत्महत्या किसी भी विष, अस्त्र,

शस्त्र, अग्नि, पानी, श्वासरोध, फांसी, यान-वाहन, उच्च स्थान से गिरना आदि से की जा सकती है। समाधि में मृत्यु एकदम नहीं होती है। इसकी प्रक्रिया 12 वर्ष तक शनैः शनैः होती है। यम समाधि को त्यागकर सामान्य जीवन भी जीया जाता है जब मरण के कारण रूप रोग, विपत्ति, हिंस्रपशु आक्रमण, विषाक्त जीवों के द्वारा दंश, दूसरों के द्वारा विष पान आदि कारक दूर हो जाते हैं परन्तु आत्महत्या/सतीदाह एकदम होता है। समाधि का भाव स्वयं के निर्मल परिणाम से उत्पन्न होता है जबकि आत्महत्या का भाव एक आवेग, आवेश, विवशता, उत्तेजना, संक्लेश, पीड़ा आदि का परिणाम होता है। समाधि जीवन के अन्त में की जाती है जब सभी भोगों, वासना, इच्छा पूर्ति के कार्य करने के पश्चात् इनसे मुक्ति पाने का भाव उत्पन्न होता है।

मेडिकल साइंस के अनुसार भी जिनके प्राकृतिक रूप से मृत्यु का प्रोसेज प्रारम्भ हो चुकी है, जहाँ पर मृत्यु होना अवश्यंभावी है, यदि कोई व्यक्ति टार्मिनली इल है अर्थात् उसके जीवन का अन्त अवश्यंभावी है यदि ऐसे व्यक्ति की ब्रेन डेंड हो चुकी हो तो उसके लाइफ सपोर्ट को हटाया जा सकता है। हॉलैंड विश्व का पहला देश है जहाँ व्यक्ति को यह कानूनी अधिकार प्राप्त है कि वह इच्छा मृत्यु प्राप्त कर सकता है। आस्ट्रेलिया आदि कुछ देश में भी ऐसा कानून है। वैदिक धर्मानुसार श्रीराम ने भी जल समाधि ली थी। इसी प्रकार विवेकानन्द ने भी। राष्ट्रसंत विनोबा भावे तो जैन धर्म की विधि के अनुसार समाधि-मरण को वरण किया था। वैदिक धर्म ग्रन्थ मनुस्मृति में भी विस्तार से संन्यास ग्रहण एवं सन्यास मरण का जो वर्णन है उस की अधिकांश प्रक्रिया जैन समाधि-मरण प्रक्रिया से समानता रखती है। विस्तृत ज्ञान के लिए समाधि संबन्धी मेरे अन्य लेख एवं साहित्य का अध्ययन करें। विश्वकल्याण के लिए वैदिक ऋषि दधिची ने स्वेच्छा से अन्न जल त्याग करके शरीर त्याग किया था। जिनकी अस्थि से इन्द्र ने बज्र तैयार करके वृत्रासुर को मारा था। महात्मा बुद्ध ने भी अन्तिम में समाधि धारण पूर्वक परिनिर्माण प्राप्त किया था। वैदिक, बौद्ध आदि धार्मिक परम्परा में यह प्राचीन आध्यात्मिक समाधि-मरण प्रक्रिया सर्व साधारण में बहु प्रचलित नहीं होने के कारण तथा विदेश में प्रायः यह प्रथा नहीं होने के कारण वर्तमान में भारत में भी इससे सर्व साधारण जन अनभिज्ञ है। परन्तु जैन धर्म में अति प्राचीन काल से लाखों-करोड़ों वर्षों से यह प्रथा है और अभी भी प्रचलित है। इस दृष्टि से यह प्रक्रिया जैन स्वीय विधि (पर्सनल लॉ) है, और उनके अपने कस्टम (रुढ़ि, परम्परा) है। आत्महत्या एक इम्पलिसव प्रक्रिया है जबकि समाधि मृत्यु- महोत्सव, वीर मरण है जिससे समाज में ज्ञान, वैराग्य, त्याग, आध्यात्मिकता, निस्पृहता, अनासक्त , आध्यात्मिक-शहीद का पाठ पढ़ाने वाला होने से लोक-हितकारी है। अतः समाधि-

मरण सामाजिक व्यवस्था के अनुकूल है न कि विरुद्ध है। क्योंकि इससे समाज को शिक्षा मिलती है, प्रेरणा मिलती है न कि समाज में आतंक, अव्यवस्था अन्धविश्वास फैलता है। जैन धर्म में एक भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलता है कि कोई स्वस्थ्य, कम आयु वाला व्यक्ति विवशता या आवेश में आकर उपर्युक्त समाधि मरण के कारण बिना समाधि मरण किया हो। इतना ही नहीं, इसके दुष्प्रभाव से अन्य कोई धर्मावलम्बी भी कम आयु में स्वस्थ्य रहते हुए समाधि मरण किया हो ऐसा भी नहीं है। जिस प्रकार कि सिनेमा, टी.वी. कार्यक्रम के अन्धानुकरण से अनेक बच्चों से लेकर बड़े तक भी हत्या, बलात्कार, चोरी, डैकैती, आत्महत्या, फैशन, व्यसन करते हैं। ऐसा कुछ भी दुष्प्रभाव समाधि-मरण से न हुआ है, न हो रहा है, न होने की संभावना है। क्योंकि आध्यात्मिक प्रक्रिया सामान्य जन के लिए दुरुह, कष्टसाध्य, अनजान, अस्वचिकर, अप्रिय, अनावश्यक, व्यर्थ कार्य है। उन्हें तो सत्ता, सम्पत्ति, भोग, राग-द्वेष, मोह, ईर्ष्या, लोभ, प्रसिद्धि, लडाई, झगड़ा, परनिन्दा, पर-अपकार, फैशन, व्यसन, दिखावा, शोषण, भ्रष्टाचार, खाओ-पीओ-मजाकर चाहिए। अधिकांश व्यक्ति भगत सिंह, सुभाषचन्द्र बोष, राणाप्रताप आदि के समान स्वार्थ त्यागी, बलीदानी नहीं बनना चाहते हैं परन्तु टाटा, बिरला, नट-नटी, नेता-खलनेता आदि बनना चाहते हैं। क्या जो देशभक्त, क्रान्तिकारी, त्यागीरों ने देश हित के लिए कष्ट सहा, फाँसी पर चढ़े, स्वयं के ऊपर गोली चलाकर वीरगति को प्राप्त हुए उन्हें कायरों के समान जघन्य अपराध स्वरूप आत्महत्या करने वाला कहा जायेगा ?

धर्म के नाम पर, देवी-देवता, ईश्वर को प्रशन्न करने के लिए या किसी प्रकार मान्यता अथवा संकट दूर करने के लिए जो पशु-पक्षी, नर, स्वपरिजन से लेकर स्व-बलि चढ़ाते हैं वह भी सब हिंसा है, जघन्य अपराध है, मानव जाति के लिए कलंक है, पर्यावरण को पारस्थितिकी तंत्र को क्षतिपहुँचाने वाला है। इसी प्रकार मांस, चमड़ा, हड्डी, शारीरिक किसी भी अवयव के लिए, औषधि, प्रसाधन सामग्री के लिए या धन कमाने के लिए जो पशु-पक्षी आदि की हत्या सामान्य व्यक्ति से लेकर सरकार कानून बनाकर करती है, करवाती है, लाइसेन्स देती है, मांस निर्यात करती है वह सब हत्या है, प्राकृतिक न्याय के अनुसार घोर अवैधानिक अपराध है तथा पर्यावरण प्रदूषक, एवं पारस्थितिकी तंत्र के लिए हानि कारक होने से वैश्विक अपराध है। इसी प्रकार गर्भपात, दहजहत्या, फिरोति के लिए अपहरण, शोषण, भ्रष्टाचार, अन्याय-अत्याचार, अव्यवस्था, चोरी, मिलावट, कर्तव्य चोरी, अनुशासनहीनता, फैशन-व्यसन, अस्वच्छता, उत्तेजित, शीघ्र समय पर न्याय नहीं मिलना, धर्मान्धता, कटूरता, आतंकवाद, राजनैतिक भ्रष्टाचार आदि अपराध है, समाज व राष्ट्र के लिए अहितकर

है। अतः इन सब को जन जागृति, लोकहित याचिका के द्वारा, शिक्षा, संस्कार, सदाचार, सरकार, और कानून द्वारा रोकना चाहिए, परिशोधन करना चाहिए। इन सब के लिए तो समय, साधन, ज्ञान, विवेक साहस, पुरुषार्थ नहीं लगाते हैं परन्तु अनावश्यक कार्य में इन सब का दुरुपयोग करते हैं। आओ ! हम सब मिलकर पंथ-मत-जाति, राजनीति के भेद-भाव को त्यागकर आत्म विकास से लेकर विश्व विकास के लिए समग्रता से स्वेच्छा से सतत प्रयास करें।



## प्रकरण-2

### समाधि के योग्य परिस्थिति

उपर्युक्ते जरसि रुजायां च निःप्रतीकरे ।

धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः ॥१ र. श्रा. पृ. 222

उपद्रव को उपर्युक्त कहते हैं। यह तिर्यञ्च, मनुष्य, देव और अचेतन कृत होने से चार प्रकार का होता है। जिसमें अन्न की कमी होने से भिक्षा का मिलना भी कठिन हो जाता है, उसे दुर्भिक्षा कहते हैं। वृद्धावस्था के कारण जिसमें शरीर अत्यन्त जीर्ण हो जाता है उसे जरा कहते हैं, और उपस्थित हुए रोग को रुजा कहते हैं। जब ये चारों वस्तुएँ इस रूप में उपस्थित हो कि उनका प्रतिकार ही न किया जा सके तब रत्नत्रय रूपी धर्म की आराधना के लिए शरीर छोड़ने को सल्लेखन कहते हैं। स्वपर के प्राणघात के लिये जो शरीरत्याग होता है वह सल्लेखना नहीं है।

स्नेहं वैरं सङ्गं परिग्रहं चापहाय शुद्धमनाः ।

स्वजनं परिजनमपि च क्षान्त्वा क्षमयेत्प्रियैर्वर्चनैः ॥३

आलोच्य सर्वमेनः कृतकारितमनुमतं च निर्व्याजम् ।

आरोपयेन्महाब्रतमामरणस्यायि निशेषम् ॥४

उपकारक वस्तु में जो प्रीति का संस्कार होता है उसे स्नेह कहते हैं। अनुपकारक वस्तु में द्वेष का संस्कार होता है उसे बैर कहते हैं। स्त्री, पुत्रादिक में हैं और मैं इनका हूँ, इस प्रकार के 'ममेद' भाव को सङ्ग कहते हैं। बाद्य और अन्तरङ्ग के भेद से परिग्रह दो प्रकार का होता है। सल्लेखना धारण करने के लिए उद्यत पुरुष इन सबको छोड़कर निर्मलचित्त होता हुआ मधुर वचनों के द्वारा स्वजन तथा परिजन दोनों को क्षमा करे और दोनों से अपने आपको क्षमा करावे। जो पाप स्वयं किया जाता है उसे कृत कहते हैं। जो दूसरे के द्वारा कराया जाता है उसे कारित कहते हैं। और किसी दूसरे के द्वारा किए हुए पाप को जो मन से अच्छा समझा जाता है उसे अनुमत कहते हैं। इन सभी पापों की निश्छलभाव से आलोचना कर मरण पर्यन्त स्थिर रहने वाले अहिंसादि महाब्रतों को धारण करे।

शोकं भयमवसादं क्लेदं कालुष्यमरतिमपि हित्वा ।

सत्त्वोत्साहमुदीर्य च मनः प्रसाद्यं शृतैरमृतैः ॥५

इष्ट का वियोग होने पर उसके गुणों का बार-बार चिन्तन करना शोक कहलाता है। क्षुधा, तृष्णा आदि की पीड़ा के निमित्त से जो डर होता है उसे भय कहते हैं अथवा इहलोकभय, परलोकभय आदि के भेद से जो सात प्रकार का भय होता है वह भय कहलाता है। विषाद अथवा खेद को अवसाद कहते हैं। स्नेह को क्लेद कहते हैं। किसी विषय में राग-द्वेष की जो परिणति होती है उसे कालुष्य कहते हैं। अप्रसन्नता को अरति कहते हैं।

सल्लेखना के करने में जो कायरता का अभाव है उसे सत्त्वोत्साह कहते हैं। सल्लेखना को धारण करने वाला पुरुष इन शोक आदि को छोड़कर शास्त्र रूपी अमृत के द्वारा मन को प्रसन्न रखे। यहाँ संसार सम्बन्धी दुखों से उत्पन्न होने वाले संताप को दूर करने के कारण शास्त्र को अमृत कहा गया है। तात्पर्य यह है कि सल्लेखना धारण करने वाला मनुष्य विकथाओं में समय न लगाकर स्वयं शास्त्र पढ़े अथवा दूसरे में मुख से पढ़वावें।

**आहारं परिहाप्य क्रमशः स्निग्धं विवर्द्धयेत्पानम् ।**

**स्निग्धं च हापित्वा खरपानं पूर्यत्क्रमशः ॥16**

सल्लेखना के समय आहारादि के छोड़ने का क्रम यह है कि पहले दाल, भात, रोटी आदि आहार को छोड़कर दूध आदि स्निग्ध पेय पदार्थों को ग्रहण करे। पश्चात उसे भी छोड़कर खरपान-स्निग्धता रहित पेय पदार्थों का सेवन करे अर्थात् जिसमें से वी निकाला जा चुका है ऐसी छाँछ को ग्रहण करे और फिर उसे भी छोड़कर मात्र गर्म पानी को ग्रहण करे।

**खरपानहापनामपि कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या ।**

**पञ्चनमस्कारमनास्तनुं त्यजेत्सर्वयत्नेन ॥17**

पश्चात् उस गर्म जल का भी त्याग कर अपनी शक्ति उल्घंघन न करता हुआ एक-दो-तीन आदि दिनों का उपवास करे। और अन्त में व्रत-संयम-चारित्र तथा ध्यान विषयक धारणा आदि सभी कार्यों में तत्पर रहता हुआ पञ्चनमस्कार मन्त्र की आराधना में अपना मन लगावे। अन्त में बड़ी सावधानी से शरीर का त्याग करे।

### समाधि के अतिचार (दोष)

**जीवितमरणाशङ्गे भयमित्रस्मृतिनिदाननामानः ।**

**सल्लेखनातिचारः पञ्च जिनेन्द्रैः समादिष्टाः ॥18**

सल्लेखना धारण कर ऐसी इच्छा रखना कि मैं कुछ समय तक और जीवित रहता, तो अच्छा होता यह जीविताशंसा नाम का अतिचार है। क्षुधा, तृष्णा आदि की होता, तो अच्छा होता यह जीविताशंसा नाम का अतिचार है। क्षुधा, तृष्णा आदि की पीड़ा होने पर ऐसी इच्छा रखना कि मेरी मृत्यु जल्दी हो जाती तो अच्छा होता, यह जीविताशंसा नाम का अतिचार है। इहलोकभय और परलोकभय अपेक्षा भय के दो भेद हैं। मैंने सल्लेखना धारण की तो है, परन्तु मुझे क्षुधा, तृष्णा आदि की पीड़ा अधिक समय हैं। मैंने सल्लेखना धारण की तो है, परन्तु मुझे क्षुधा, तृष्णा आदि की पीड़ा अधिक समय तक सहन न करना पड़े, इस प्रकार का भय होना इहलोकभय कहलाता है। और इस प्रकार के दुर्धर कठिन अनुष्ठान के करने से परलोक में विशिष्ट फल होगा या नहीं, ऐसा भय रखना परलोकभय है। बाल्य आदि अवस्थाओं में जिनके साथ क्रीड़ा की थी, ऐसे मित्रों को बार-बार स्मरण करना मित्रस्मृति नाम का अतिचार है। और आगामी भोग आदि की आकांक्षा रखना निदान नाम का अतिचार है।

### मामाधि के सुफल

**निःश्रेयसमभ्युदयं निस्तीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिधिम् ।**

**निःपिबति पीतधर्मा सर्वेदुःखैरनालीढः ॥19**

सल्लेखना का फल मोक्ष तथा स्वर्गादिक का सुख प्राप्त करना है। मोक्ष को निःश्रेयस कहते हैं और अहमिन्द्र आदि के पद को अभ्युदय कहते हैं। ये दोनों ही पद सुख के समुद्र स्वरूप हैं। अर्थात् निःश्रेयस आत्मोथ अनन्त सुख का समुद्र है और अहमिन्द्र आदि का पद रोग, शोक आदि से रहित होने के कारण सांसारिक सुख का उत्कृष्ट स्थान है। निःश्रेयस-मोक्ष, निस्तीर है अर्थात् अन्त से रहित है और अभ्युदय-अहमिन्द्र आदि का पद दुस्तर है अर्थात् सागरों पर्यन्त विशाल काल से उनका अन्त प्राप्त होता है। इन दोनों फलों को प्राप्त होने वाला क्षपक पीतधर्मा होता है अर्थात् उत्तम शामादि रूप अथवा चारित्र रूप धर्म का पान करने वाला होता है और शारीरिक, मानसिक तथा आगन्तुक दुखों से असंस्पृष्ट-अब्रूता रहता है।

**जन्मजरामयमरणैः शोकैर्दुःखैर्भयैश्च परिमुक्तम् ।**

**निर्वाणं शुद्धसुखं निःश्रेयसमिष्यते नित्यम् ॥10**

जो निर्वाण अर्थात् मोक्ष है वही निःश्रेयस है। वह जन्म, जरा, रोग और मरण से, शोक, दुःख और भयों से सर्वथा रहित है, शुद्ध आत्मोत्थ सुख से सहित है तथा अविनाशी है। पर्यायान्तर की उत्पत्ति को जन्म कहते हैं, बुढ़ापे को जरा कहते हैं, रोग आमय कहलाते हैं तथा शरीरादिक का छूट जाना मरण कहलाता है। शोक, दुःख और भय से भी रहित होता है।

### सल्लेखना के योग्य

**दुविहं तु भत्तपच्चक्खाणं सविचारमध अविचारं ।**

**सविचारमणागाढे मरणे सपरक्ममस्स हवे ॥64 ॥ भगवती आराधना**

भक्त प्रत्याख्यान (समाधि)दो प्रकार का ही है। सविचार और अविचार। सविचार भक्त प्रत्याख्यान (समाधि)सहस्रा मरण के उपस्थित न होने पर पराक्रम अर्थात् साहस और बल से युक्त साधु को होता है।

**वाहिव्व दुष्पसज्ज्ञा जरा य सामण्णजोग्गहाणिकरी ।**

**उवसग्गा वा देवियमाणुसतेरिच्छया जस्स ॥70**

जिसके दुष्प्रसाध्यव्याधि हो, अथवा श्रामण्ण (साधुता)के सम्बन्ध को हानि पहुँचाने वाली वृद्धावस्था हो अथवा देवकृत मनुष्यकृत और तिर्यक्षकृत उपसर्ग हो तब भक्त प्रत्याख्यान करने के योग्य है।

अणुलोमा वा सन् चारित्विणासया हवे जस्त ।  
 दुष्मिक्खे वा गाढे अडवीए विष्पणद्वो वा ॥ 71  
 अनुकूल बन्धु मित्र शत्रु हो जो चारित्र का विनाश करने वाले हो । अथवा  
 अनुकूल बन्धु और शत्रु जिसके चारित्र का विनाश करने वाले हो । भयंकर दुर्भिक्ष हो  
 अथवा भयंकर जंगल में भटक गया हो तो भक्त प्रत्याख्यान के योग्य होता है ।  
 चक्षुं व दुब्बलं जस्त होज सोदं व दुब्बलं जस्त ।  
 जंघाबलपरिहीणो जो ण समत्थो विहरिदुं वा ॥ 72  
 जिसकी चक्षु दुर्बल हो अथवा जिसके श्रोत्र दुर्भल हो, जो जंघाबल से हीन  
 हो अथवा विहार करने में समर्थ न हो ।  
 अण्णम्मि चावि एदारिसंमि आगाढ़कारणे जादे ।  
 अरिदो भत्तपइण्णाए होदि विरदो अविरदो वा ॥ 73  
 उक्त कारण के समान अन्य भी प्रबल कारण उपस्थित होने पर विरत(साधु)  
 अथवा अविरत (गृहस्थात्रमी) भक्तप्रत्याख्यान के योग्य होता है ।

**सल्लेखना के अयोग्य**

उस्सरड जस्त चिरमवि सुहेण सामण्णमणदिचारं वा ।  
 णिजावया य सुलहा दुष्मिक्खभयं च जदि णत्थि ॥ 74  
 जिसका चारित्र चिरकाल भी विना किसी क्लेश के अतिचार रहित अच्छी  
 तरह पालित हो रहा है, अथवा समाधिमरण करने में सहायक निर्यापिक (सुलहा) सुलभ  
 हैं । (च) ओर (जदि) यदि दुर्भिक्ष का भय नहीं है ।  
 तस्स ण कप्पदि भत्तपइण्णं अणुवद्विदे भये पुरदो ।  
 सो मरणं पच्छितो होदि हु सामण्णणिविण्णो ॥ 75  
 आगे भय के अनुपस्थित होते हुए उसका भक्तप्रत्याख्यान योग्य नहीं है । वह  
 यदि मरण की प्रार्थना करता है तो मुनिधर्म से विरक्त ही होता है ।  
 अणुपुव्वेणाहारं संवट्टो य सल्लिहड देहं ।  
 दिवसुगहिणं तवेण चावि सल्लेहणं कुणई ॥ 749  
 क्रम से आहार को कम करते हुए शरीर को कृश करता है । और एक-एक  
 दिन ग्रहण किये तप से, एक दिन अनशन, एक दिन वृत्तिपरिसंख्यान इस प्रकार सल्लेखना  
 को करता है ।  
 विविहिं एसणाहिं य अवग्नहेहिं विविहेहिं उग्नेहिं ।  
 संजममविरांतो जहाबलं सल्लिहड देहं ॥ 750  
 नाना प्रकार के रस रहित भोजन, अल्प भोजन, सूखा भोजन, आचाम्ल

भोजन आदि से और नाना प्रकार के ऊग नियमों से दोनों प्रकार के संयमों को नष्ट न  
 करता हुआ यति अपने बल के अनुसार देह को कृश करता है ।

सदि आउगे सदि बले जाओ विविधाओ भिक्खुपडिमाओ ।  
 ताओ विण बाधंते जहाबलं सल्लिहंतस्स ॥ 251

आयु के होते हुए और बल के होते हुए अपनी शक्ति के अनुसार शरीर को  
 कृश करने वाले यति के विविध भिक्षु प्रतिमाएँ हैं, वे भी महान् कष्ट नहीं देती । जो शक्ति  
 के बिना करता है उसे प्रारम्भ में ही महान् क्लेश होने से योग का भंग तथा महा संक्लेश  
 परिणाम होते हैं ।

सल्लेहणा सरीरे तबोगुणविधी अणेगहा भणिदा ।

आयंबिलं महेसी दु उक्सस्यं विंति ॥ 252

शरीर की सल्लेखना के निमित्त अनेक प्रकार तप नामक गुण के विकल्प पूर्व  
 गाथाओं के द्वारा कहे हैं । उनमें से महर्षि आचाम्ल को ही उत्कृष्ट कहते हैं ।

छट्टमदसमदुबालसेहिं भत्तेहिं विदियअट्टेहिं ।

मिदलहुं आहारं करेदि आयंबिलं बहुसो ॥ 253

उत्कृष्ट दो दिन, तीन दिन, चार दिन, और पाँच दिन के उपवास के बाद  
 अधिकतर परिमित और लघु अहार आचाम्ल को करते हैं ।

## 12 साल समाधि काल

उक्सस्एण भत्तपइण्णाकालो जिणेहिं णिद्विडो ।

कालम्मि संपहुते बारसवरिसाणि पुण्णाणि ॥ 254

यदि आयु का काल अधिक शेष हो तो जिन भगवान् ने उत्कृष्ट से  
 भक्तप्रत्याख्यान का काल पूर्ण बारह वर्ष कहा है ।

जोगेहिं विचित्तेहिं दुःखवेङ संवच्छराणि चत्तारि ।

वियडी णिजूहिता चत्तारि पुणो वि सोसेदि ॥ 255

नाना प्रकार के कायक्लेशों के द्वारा चार वर्ष बिताता है । दूध आदि रसों को  
 त्याग कर फिर भी चार वर्ष तक शरीर को सुखाता है ।

आयंबिलणिव्वियडीहिं दोणिण आयंबिलेण एकं च ।

अद्व णादिविगद्वेहिं अदो अद्व विगद्वेहिं ॥ 256

आचाम्ल और निर्विकृति के द्वारा दो वर्ष बिताता है । आचाम्ल के द्वारा एक  
 वर्ष बिताता है । मध्यम तप के द्वारा शेष वर्ष के छह माह और उत्कृष्ट तप के द्वारा शेष छह  
 मास बिताता है ।

भृत्यं खेत्तं कालं धारुं च पदुच्यं तहं तवं कुजा ।  
बादो पित्तो सिंभो व जहा खोभंण उवयंति ॥ 257

आहार, क्षेत्र, काल अपनी शारीरिक प्रकृति को विचार कर इस प्रकार तप करना चाहिये जिस प्रकार बात, पित्त और कफ क्षोभ को प्राप्त न हो ।

एवं सरीरसल्लेहणाविहिं बहुविहा व फासेंतो ।

अज्ञवसाणविसुद्धिं खणमवि खवओण मुंचेज ॥ 258

उक्त क्रम से नाना प्रकार की सल्लेखना की विधि को करते हुए भी परिणामों की विशुद्धि को क्षपक एक क्षण के लिये भी न छोड़े ।

अज्ञवसाणविसुद्धिए वजिदो जे तवं विगद्धंपि ।

कुव्वंति बहिल्लेस्सा ण होइ सा केवला सुद्धी ॥ 259

परिणामों की विशुद्धि को छोड़कर जो उत्कृष्ट भी तप करते हैं उनकी चित्तवृत्ति पूजा, सत्कार आदि में ही लगी होती है । उनके अशुभ कर्म के आस्रव से रहित शुद्धि नहीं होती अर्थात् दोषों से मिली हुई शुद्धि होती है ।

अविगद्ध पि तवं जो करेइ सुविसुद्धसुक्लेस्साओ ।

अज्ञवसाणविसुद्धो सो पावदि केवलं सुद्धि ॥ 260

जो अतिविशुद्ध शुक्ललेश्या से युक्त और विशुद्ध परिणाम वाला अनुत्कृष्ट भी तप करता है वह केवल शुद्धि को पाता है ।

अज्ञवसाणविसुद्धी कसायकलुसीकदस्स पात्थिति ।

अज्ञवसाणविसुद्धी कसाय सल्लेहणा भणिदा ॥ 261

जिसका चित्त कषाय से दूषित है उसके परिणाम विशुद्धि नहीं होती इसलिये परिणाम विशुद्धि को कषाय सल्लेखना कहा है ।

पंचिदिव्यप्पयारो मणसंखोकरणो जहिं पत्थि ।

चिढ्डिदि तहिं तिगुत्तो ज्ञाणेण सुहप्पवत्तेण ॥ 634

जहाँ मन को संक्षोभ करने वाला पाँचों इत्रियों का अपने विषयों में उत्सुकतापूर्वक गमन संभव नहीं है उस वस्तिका में साधु क्षपक मन, वचन, काय को गुप्त करके, सुखपूर्वक ध्यान करता हुआ निवास करता है ।

**तैदिक (ठिन्दू)धर्मानुसार समाधि**

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ 21 ॥ पातञ्जलयोगप्रदीप पृ. 146

चित्त की वृत्तियों को रोकना योग है ।

वृत्तयः पश्चत्ययः क्लिष्टाक्लिष्टाः ॥ ५ ॥

वृत्तियाँ पाँच प्रकार की होती हैं । क्लिष्ट अर्थात् रागद्वेषादि क्लेशों की हेतु और अक्लिष्ट अर्थात् राग-द्वेषादि क्लेशों की नाश करने वाली ।

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधं ॥ 121 ॥

अभ्यास और वैराग्य से उन वृत्तियों का निरोध होता है ।

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यास ॥ 13 ॥

उनमें से चित्त की स्थिति के विषय में यत्न करना अभ्यास है ।

स तु दीर्घकालैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमि ॥ 14 ॥

किन्तु वह पूर्वोक्त अभ्यास दीर्घ कालपर्यन्त निरन्तर व्यवधानरहित ठीक-ठीक श्रद्धा, वीर्य, भक्तिपूर्वक अनुष्टान किया दृढ़ अवस्थावाला हो जाता है ।

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकासरसंज्ञा वैराग्यम् ॥ 15 ॥

दृष्ट और आनुश्रविक विषयों में जिसको तृष्णा नहीं रही है, उसका वैराग्य वशीकार नाम वाला अर्थात् अपर- वैराग्य है ।

भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥ 19 ॥

विदेह और प्रकृतिलयों को जन्म से ही असम्प्रज्ञात-समाधि की प्रतीति होती है ।

श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥ 20 ॥

दूसरे योगी जो विदेह और प्रकृतिलय नहीं है, उनको श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञापूर्वक असम्प्रज्ञात-समाधि सिद्ध होती है ।

तीव्रसंवेगानामासन्नः ॥ 21 ॥

तीव्र संवेग और अधिमात्र उपाय वाले योगियों को समाधि-लाभ शीघ्रतम होता है ।

ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥ 23 ॥

अथवा ईश्वर-प्रणिधान से; शीघ्रतम समाधि-लाभ होता है ।

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥ 24 ॥

क्लेश, कर्मों के फल और वासनाओं से असम्बद्ध, अन्य पुरुषों से विशेष (विभिन्न उत्कृष्ट) चेतन ईश्वर है ।

### समाधि के विधन और निवारण-उपाय

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमि-

क्त्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥ 130 ॥

व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्ध-भूमिक्त्व, अनवसितित्व ये चित्त के नौ विक्षेप(योग के)विधन हैं ।

दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः ॥ 131 ॥

दुःख, दौर्मनस्य, अङ्गमेजयत्व, श्वासप्रश्वास- ये विक्षेपों के साथ होने वाले हैं अर्थात् उनके होने से ये पाँच प्रतिबन्धक भी उपस्थित हो जाते हैं ।

मैत्रीकस्तु दितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां

भावनातश्चित्प्रसादनम् ॥33॥

सुखी, दुःखी, पुण्यात्मा और पापियों के विषय में यथा क्रम मित्रता, दया, हर्ष और उपेक्षा की भावना के अनुष्ठान से चित्र प्रसन्न और निर्मल होता है।

मनुस्मृति में वर्णित सन्यास एवं समाधि-मरण

आश्रमादाश्रमं गत्वा हुतहोमो जितेन्द्रियः ।

भिक्षाबलिपरिश्रान्तं प्रब्रह्मन्प्रत्यवर्थते ॥34(अध्याय 6)

एक आश्रम से दूसरे आश्रम में जाकर जितेन्द्रिय हो भिक्षा बलिवैश्वदेव और अग्निहोत्र आदि नित्य कर्म करते-करते थक जाने पर जो अन्त में संन्यास ग्रहण करके देह त्याग करता है वह परलोक में महान् कल्याण लाभ प्राप्त करता है।

यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रब्रजन्त्यभयं गृहात् ।

तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥39

जो सब प्राणियों को अभय देकर घर से संन्यास के लिए जाता है, उस ब्रह्मवादी को तेजोमय लोक प्राप्त होते हैं।

यस्मादण्वपि भूतानां द्विजात्रोत्पद्यते भयम् ।

तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन ॥40

जिससे प्राणियों को अणुमात्र भी भय उत्पन्न नहीं होता, उस देह से मुक्त पुरुष को कहीं किसी का भी भय नहीं रहता।

अगारादभिनिष्कान्तः पवित्रोपचितो मुनिः ।

समुपोदेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥41

घर से निकलकर दण्ड, कमण्डलु आदि पवित्र पदार्थों को साथ में ले, किसी से वृथा भाषण न करे और सुखदुःख भोज्य पदार्थों की भी कोई इच्छा न करके भ्रमण करे। एक एवं चरेन्त्रित्यं सिद्ध्यर्थमसहायवान् ।

सिद्धिमेकस्य संपश्यन्न जहाति न हीयते ॥42

मोक्ष की सिद्धि के लिए असहाय होकर अकेला ही नित्य भ्रमण करे वह न किसी को छोड़ता है और न किसी से छोड़ा जाता है (अर्थात् न उसे किसी को छोड़ने से दुःख होता है और न किसी से छोड़े जाने का ही)

अनन्विनिकेतः स्याद्ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् ।

उपेक्षकोऽसंकुसुको मुनिभावसमाहितः ॥43

अग्नि और गृह से रहित होकर रहे। रोगादि की परवाह न करे। स्थिर बुद्धि और मौन हो विशुद्ध भाव से ब्रह्म का मनन करता हुआ भोजन के लिए गाँव में जाय।

नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् ।

कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा ॥45

मरने की इच्छा न करे, न जीने की ही इच्छा करे। किन्तु जैसे सेवक अपने प्रभु की आज्ञा की प्रतीक्षा करता है उसी प्रकार संन्यासी काल की प्रतीक्षा करे।

दृष्टिपूतं स्तेपादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।

सत्यपूतं वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥46

आँख से जीन को देखकर पैर रखें, वस्त्र से छानकर जल पीयें, सत्य वचन बोले और पवित्र मन से कार्य करें।

अतिवादांस्तितिक्षेत नावमनयेत कंचन ।

न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वाति केनचित् ॥47

कोई अत्यन्त वाद-विवाद करे तो उसे सह ले, पर किसी का अपमान न करे, इस देह का आश्रय (क्षणभंगुर समझ) कर किसी के साथ शत्रुता न करे।

क्रुद्धयन्न न प्रति क्रूद्धये दाकुष्टः कुशलं वदेत् ।

सप्तद्वारावकीर्णं च न वाचमनृतां वदेत् ॥48

क्रोध में भेरे हुए मनुष्य का जवाब ब्रोधित होकर न दे, कोई निंदा करे तो भद्र वचन ही कहे। (पाँच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि) इन सात द्वारों से ग्रहण किये जाने वाले विषयों की चर्चा न करे (केवल ब्रह्म विषयक सत्य वचन बोले)।

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः ।

आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ॥49

सदा आत्मा के ही चिन्तन में लगा रहे। विषयों की इच्छा से रहित निरामिष होकर एक देह मात्र की सहायता से मोक्ष सुख अभिलाषी होकर संसार में विचरे।

एककालं चरेद्वैक्षं न प्रसज्जेत विस्तरे ।

भैक्षे प्रसन्नो हि यतिविषयेष्वपि सञ्जति ॥55

एक बार भिक्षा मांगनी चाहिये। भिक्षा का विस्तार न करे। बहुत भिक्षा का आसक्त संन्यासी विषयों में भी आसक्त हो सकता है।

अलाभे न विषादी स्यालाभे चैव न हर्षयेत् ।

प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासङ्गाद्विनिर्गतः ॥57

भिक्षा न मिलने पर विवाद न करे और मिलने पर हर्ष भी न करे। प्राणयात्रा रक्षार्थ भिक्षान्न से जीवन निर्वाह करे, दण्ड-कमण्डलु में भी आसक्ति न रखे।

अभिपूजितलाभांस्तु जुगुप्सेतैव सर्वशः ।

अभिपूजितलाभैश्च यतिर्मुक्तोऽपि बद्धयते ॥58

आदर के साथ भिक्षा स्वीकार करने को सब काल में बुरा समझे क्योंकि पूजित होने पर भिक्षा ग्रहण करने वाला संन्यासी मुक्त होकर भी बद्ध हो जाता है।

अल्पान्नाभ्यवहरेण रहःस्थानासनेन च ।

हित्थमाणानि विषयैरिन्द्रियाणि निवर्तयेत् ॥159

अल्पहार और एकान्त निवास इन दो उपायों से विषयों द्वारा खींची जाने वाली इन्द्रियों को वश में करे।

इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च ।

अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥160

इन्द्रियों के नियन्त्रण से और राग-द्वेष के त्याग तथा प्राणियों की अहिंसा से संन्यासी मोक्ष को पाता है।

विप्रयोगं द्वियैश्वैव संयोगं च तथाऽप्रियैः ।

जरया चाभिभवनं व्याधिभिश्चोपपीडनम् ॥162

प्रियों का वियोग, अप्रियों का सुयोग, बुद्धापे में होने वाले क्षय आदि रोगों से कष्ट (कर्म दोष के) इन परिणामों को सोचे।

संरक्षणार्थं जन्मूरां रात्रावहनि वा सदा ।

शरीरस्यात्यये चैव समीक्ष्य वसुधां चरेत् ॥163

शरीर की अस्वस्थता में भी जीवों के प्राणरक्षार्थ दिन हो या रात सदा पृथ्वी को देखकर पैर रखे।

सम्यग्दर्शनसंपत्रः कर्मभिर्न निबद्धयते ।

दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥174

ब्रह्म का सम्यक् दर्शन करने वाला कर्मों से बद्ध नहीं होता, किन्तु ब्रह्मदर्शन से विहीन पुरुष संसारी होकर जन्म-मरण के फेर में पड़ता है।

अहिंसयेन्द्रियासङ्गैर्विकैश्वैव कर्मभिः ।

तपसशरणैश्वोग्रैः साध्यन्तीह तत्पदम् ॥175

साधक अहिंसा, इन्द्रिय संयम, वैदिक कर्मों के अनुष्ठान और कठिन तपश्चर्या से ब्रह्मपद को प्राप्त होते हैं।

अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम् ।

चर्मावनद्वं दुर्गन्धि पूर्ण मूत्रपुरीषयोः ॥176

जराशोकसमाविष्टं रोगयितनमातुरम् ।

रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमं त्यजेत् ॥177

हड्डी के खंभे वाली स्नायुओं से युक्त मांस और रुधिर से लेप की हुई चमड़े से

हड्डी हुई, मलमूत्र भरी और दुर्गन्धयुक्त, जरा और शोक से आक्रान्त, रोग का घर, भूख-व्यास से व्याकुल, भोगाभिलाषी और क्षणभंगुर रूपी शरीर को पञ्चभूतों का निवास स्थान है, यह जानकर त्याग ही देना चाहिये (अर्थात् जिसमें इस आत्मा को पुनर्देह सम्बन्ध न हो ऐसा यत्न करना चाहिये)।

नदीकूलं यथा वृक्षो वृक्षं वा शकुनिर्यथा ।

तथा त्यजन्निं देहं कृच्छादग्राहाद्विमुच्यते ॥78

जैसे वृक्ष नदी के किनारे को और जैसे पक्षी वृक्ष को त्याग देता है वैसे संन्यासी इस देह को त्यागकर सांसारिक दुःखरूप ग्राह से मुक्त हो जाता है।

प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम् ।

विसृज्य ध्यानयोगेन ब्रह्माभ्योति सनातनम् ॥79

ज्ञानी अपने हितैषियों में अपने पुण्य और शत्रुओं में अपना पाप छोड़कर ध्यान योग से सनातन ब्रह्म में लीन हो जाता है।

यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निःस्पृहः ।

तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाशवतम् ॥80

पारमार्थिक विचार से विषयों को दोष पूर्ण समझकर जब उनसे विरत होता है तब वह इस लोक में सन्तोष-सुख और परलोक में अविनाशी मोक्ष सुख पाता है।

अनेन विधिना सर्वास्त्यक्त्वा सङ्गाभ्यनैः शनैः ।

सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥81

इस प्रकार (पुत्र-कलत्र आदि की) सारी आसक्तियों को धीरे-धीरे त्याग कर और (मानापमानादिक सभी द्वन्द्वों से विमुक्त होकर वह ब्रह्मा में लीन हो जाता है।

ध्यानिकं सर्वमेवैतद्यदेतदभिशब्दितम् ।

न ह्यनैत्यात्मवित्कशित्क्रियाफलमुपाशनुते ॥82

यह सब जो कहा गया है वह आत्मध्यान से ही होता है (अर्थात् ध्यान द्वारा परमात्मा में मगन होने वाले को किसी में ममता या मानापमान का दुःख नहीं होता)। इस आध्यात्मिक विषयों को न जानने वाला ब्रह्मध्यानात्मक क्रिया का फल नहीं पाता।

अनेन क्रमयोगेन परिब्रजति यो द्विजः ।

स विथ्योह पाप्मानं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥83

इस क्रमयोग से जो द्विज संन्यास-आश्रम को गहण करता है, वह इस संसार में सब पापों से छूटकर परब्रह्म में मिल जाता है।



### प्रकरण-३

#### मरण के 17 भेद

मरणाणि सत्तरस देसिदाणि तिथंकरेहिं जिणवयणे ।

तथ्य विय पुण इह संगहेण मरणाणि वोच्छामि ॥२५

जिनागम में तीर्थकरों ने मरण सतरह कहे हैं। उन सतरह प्रकार के मरणों में से भी यहाँ (संगहेण) संक्षेप से पाँच मरणों को कहूँगा।

मरण अनेक प्रकार के हैं ऐसा अन्य शास्त्रों में कहा है। उनमें से यहाँ इन मरणों को कहना है यह बतलाने के लिए यह गाथा सूत्र आया है। मरण, विगम, विनाश, विपरिणाम इन सब शब्दों का अर्थ एक है। वह मरण जीवन पूर्वक होता है। जीवन, स्थिति, अविनाश, अवस्थिति यह सब एकार्थक हैं। स्थितिपूर्वक विनाश होता है। जिसकि स्थिति नहीं है उसका विनाश नहीं है जैसे बाँझ का पुत्र नहीं होता तो उसका विनाश भी नहीं होता है। क्षणिकवादी बौद्धों ने जिस वस्तु को कहा है उस की स्थिति नहीं है अर्थात् वह वस्तु ही नहीं है। जीवन जन्म पूर्वक होता है। जो उत्पन्न नहीं हुआ उसकी स्थिति नहीं है इसलिए प्रत्येक वस्तु उत्पत्ति, विनाश और ध्रौद्यरूप को लिए हुए है। इस प्रक्रिया के अनुसार उत्पन्न हुई पर्यार्थ के विनाश का नाम मरण है। देवपना, तिर्थथपना, नारकपना, मनुष्यपना, इन पर्यार्थ का विनाश यहाँ मरण शब्द से लिया है। अथवा प्राण छोड़ने का नाम मरण है। कहा भी है 'मृद्धातु' प्राणत्वाग के अर्थ में है। इसी तरह प्राण ग्रहण को जन्म कहते हैं। प्राणों का धारण करना जीवन है। प्राणों के दो भेद हैं-द्रव्यप्राण, भावप्राण। इन्द्रियाँ पाँच, तीन बल, उच्छ्वास और आयु ये पुद्गल द्रव्यप्राण हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र ये भाव प्राण हैं। इन भाव प्राणों की अपेक्षा सिद्धों में जीवन होता है। उन प्राणों में आयु प्राण के दो भेद हैं - अद्धायु और भवायु। भव धारण को भवायु कहते हैं। भव शरीर को कहते हैं। आयु कर्म के उदय से आत्मा भव धारण करता है। अतः आयु कर्म भवधारण रूप है उसे ही भवायु कहते हैं। कहा भी है- शरीर को भव कहते हैं। वह भव आयु कर्म के द्वारा धारण किया जाता है। इसलिये भव धारण में कारण आयु कर्म को भवायु कहते हैं।

इस प्रकार आयु के वश से ही जन्म लेता है और आयु के उदय से ही जीवित रहता है। पूर्व आयु का विनाश और आगे की अन्य आयु का उदय होने पर मरण होता है।

कहा है- आयु के वश से जीव जन्म लेता है। आयु के उदय में जीवित रहता है। अन्य आयु का उदय होने पर अथवा पूर्व आयु का नाश होने पर मरता है।

अद्धा शब्द से काल कहा जाता है और आयु शब्द से द्रव्य की स्थिति। अतः द्रव्य का स्थितिकाल को अद्धायु कहते हैं। द्रव्योर्थिकनय की अपेक्षा द्रव्यों की भवायु अनादि निधन है। और पर्यार्थिक की अपेक्षा चार प्रकार की है- अनादिअनिधन, सादिअनिधन, अनादिसान्त और सादि सान्त। चैतन्य, रूपादिमत्ता, गतिहेतुता, स्थितिहेतुता, आदि सामान्य की अपेक्षा द्रव्य की स्थिति अनादि अनिधन है। अर्थात् जीवादि द्रव्य का अपना-अपना स्वभाव सदा से ही है और सदा रहेगा अतः वे सब इस तृष्णा से अनादि अनन्त हैं। केवलज्ञान आदि की अद्धायु सादि अनिधन है क्योंकि वह प्रकट होकर नष्ट नहीं होता। भवत्व की अद्धायु अनादिसनिधन (सान्त) है क्योंकि भवत्व भाव यद्यपि अनादि होता है किन्तु मुक्ति होने पर नष्ट हो जाता है। कोप आदि सादि सनिधन है।

अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव के आश्रय से स्थिति चार प्रकार की होती है। इस अद्धायु के द्वारा भव धारण रूप आयु का कथन होता है। जिन कर्मों की आयु संज्ञा होती है वे कर्म पुद्गलद्रव्य रूप होने से आयु स्थिति द्रव्यस्थिति से अत्यन्त भिन्न नहीं हैं। अथवा जो आयु संज्ञावाले पुद्गल उदय में आ रहे हैं उनके गल जाने को मरण कहते हैं। वे मरण जिन वचन में तीर्थकरों ने सतरह कहे हैं।

**शंका-** तीर्थकरों ने कहे हैं इतना ही कहना ही पर्याप्त है, जिनवचन के कहने की क्या आवश्यकता है ?

समाधान-इसमें कोई दोष नहीं है। यहाँ जिन शब्द से गणधर कहे गये हैं। 'च' शब्द के बिना भी समुच्चय रूप अर्थ का ज्ञान होता है। अतः ऐसा सम्बन्ध लेना और जिन वचन में सतरह मरण कहे हैं। इससे यह बोध होता है कि तीर्थकरों और गणधरों ने मरण के भेद कहे हैं। अतः उन दोनों के वचनों से सिद्ध होने से प्रमाण है उस में किसी प्रकार की शंका नहीं करनी चाहिए वे हैं।

(1) आवीचिमरण (2) तद्वमरण (3) अवधिमरण (4) आदि अन्तमरण (5) बालमरण (6) पंडित मरण (7) आसणमरण (8) बालपंडितमरण (9) ससल्लमरण (10) बलायमरण (11) वसट्टमरण (12) विष्पाणसमरण (13) गिद्धपुङ्गमरण, (14) भक्तप्रत्याख्यान मरण (15) प्रायोपगमनमरण (16) इंगिनीमरण (17) केवली मरण।

**1) आवीचिमरण-** वीचीशब्द तरंग को कहता है। किन्तु यहाँ वीचि के समान ऐसा अर्थ करने से वीचिका अर्थ-आयुका उदय हैं। जैसे समुद्र वैरह में तरंगें निरन्तर उठा करती हैं उसी प्रकार क्रम से आयु-नामक कर्म प्रतिसमय उदय में आता है। इसलिए उसके उदय को आवीचि शब्द से कहा है। आयु के अनुभवन को जीवन कहते हैं। वह प्रतिसमय होता है। उसका भंग मरण है। अतः जीवन की तरह मरण भी आवीची है।

क्योंकि आयु का उदय प्रतिसमय होता है। अतः प्रत्येक अनन्तर समय में मरण भी होता है। उसी प्रति समय होने वाले मरणको आवीचिमरण कहते हैं। वह भव्य जीवों के अनादिसान्त हैं।

**शंडा-सिद्धोंके ही मरणका अन्त होता है, दूसरों के नहीं।** किन्तु सिद्ध भव्य नहीं हैं। जिनके भविष्य में सिद्धपर्याय होने वाली है उन्हें भव्य कहते हैं। सिद्ध तो सिद्धपर्याय प्राप्तकर चुके हैं तब कैसे कहते हैं कि भव्यजीवों का मरण अनादिसान्त है?

**समाधान-** ऐसा कहा है कि भव्यों का आवीचिमरण अनादि और सान्त है। अतः जो द्रव्य भव्यत्वपर्यायिको प्राप्त था वही यह है ऐसा मानकर भव्यों के अनादिसान्त मरण कहा है ऐसा निश्चित है। अभव्यजीवों के सामान्य अपेक्षा से आयु का उदय बराबर रहता है अतः उनका आवीचिमरण अनादिनिधन है। किन्तु भव की अपेक्षा और क्षेत्रादि की अपेक्षा सादि है। चार आयुकर्मों में से यद्यपि एक जीव के दो ही आयुकर्मों की सत्ता रहती है (एक जिसे भोगता है और दूसरी जिसे परभव के लिए बाँधा है)। तथापि उदय एक ही आयु का होता है। दो प्रकृतियाँ सत्ता में एकसाथ रह सकती हैं। वहीं कहते हैं- तिर्यशायु और मनुष्यायु सब आयुओं के साथ सत्ता में रहती है अर्थात् देवायु और नरकायु दूसरी देवायु और नरकायु के साथ सत्ता में नहीं रहती; क्योंकि देव मरकर देव या नारकी नहीं हो सकता और न नारकी मरकर नारकी या देव होता है।

**शंडा-आयुकर्मों की यह सत्कर्मव्यवस्था रहे, किन्तु दो आयु कर्मों का एकसाथ उदय क्यों नहीं होता ?**

**समाधान-** आयुकर्म की जिस प्रकृति की स्थिति अनुभव में आ रही हैं और जिस आयु की स्थिति का उदय हो रहा है उसकी स्थिति जहाँ समाप्त होती है उसमें ऊपर दूसरी आयु के निषेक रहते हैं। अतः जब तक पहली आयु की स्थिति समाप्त नहीं होती तब तक दूसरी उदय में आ नहीं सकती। इसलिए एक साथ आयु की दो प्रकृतियों का उदय नहीं होता। तथा एक जीव के एक साथ दो भव या दो गति सम्भव नहीं हैं। और भव तथा गति को लेकर उसके अनुसार आयु का उदय होता है, अन्यथा नहीं होता, इसलिए दो भी आयु का उदय एक जीव के नहीं होता। इस प्रकार एक आयु कर्म की एक ही प्रकृति एक जीव के उदय में है अतः एक-एक आयु कर्म के गलनरूप ही मरण होता है। यह प्रकृति मरण काल भेद से एक भी जीव के चार प्रकार का होता है। वह आवीचिक मरण ही है। इस प्रकार प्रकृति आवीचिक मरण का व्याख्यान किया।

**2) दूसरा स्थिति आवीचिमरण -** भव धारण में कारण रूप से परिणत हुए पुद्गलों के स्नेह-वश आत्मा के प्रदेशों में ठहरने को स्थिति कहते हैं। आत्मा का कषाय परिणाम पुद्गलों की स्थिता का सहकारी होता है। परिणाम कारण तो स्वयं पुद्गलद्रव्य ही है। यह

स्थिति एक समय से लेकर एक-एक समय बढ़ते-बढ़ते कुछ तेतीस सागरों के जितने समय है उतने भेद वाली होती है। यह उत्कृष्टस्थिति है। जघन्यस्थिति अन्तर्हमुहूर्त प्रमाण होती है। तरंगों के समान क्रम से अवस्थित उस स्थिति के विनाश से आत्मा स्थिति आवीचिमरण होता है। भवान्तर प्राप्ति पूर्वक उसके अनन्तर पुर्ववर्ती भव का विनाश तदभवतरण है वह तो इस प्रकार जीवन अनन्तवार प्राप्त किया है। अतः तद्भवमरण दुर्लभ नहीं हैं।

**अनुभव आवीचिमरण कहते हैं-** कर्मपुद्गलों के रस को अनुभव कहते हैं। वह अनुभव परमाणुओं में छह प्रकार की वृद्धि हानि रूप से तरंगों की तरह क्रम से अवस्थित है। उसका विनाश अनुभव अवीचिमरण है। आयुसंज्ञा वाले पुद्गलों के प्रदेश जघन्य निषेक से लेकर एक आदि वृद्धि के क्रम से तरंगों की तरह अवस्थित है उनके गलने को प्रदेश आवीचिमरण कहते हैं।

**3) अवधिमरण-** जो वर्तमान में जैसा मरण प्राप्त करता है यदि वैसा ही मरण होगा तो उसे अवधिमरण कहते हैं। उसके दो भेद हैं- देशावधिमरण और सर्वावधिमरण। वर्तमान में जो आयु जैसे प्रकृति, स्थिति, अनुभव और प्रदेशों को लेकर उदय में आ रही है वैसी ही प्रकृति आदि को लिए हुए यदि पुनः आयुबन्ध करता है और उसी प्रकार भविष्य में उसका उदय होता है तो उसे सर्वावधिमरण कहते हैं। और वर्तमान में जैसा आयु का उदय होता है वैसा ही यदि एक देश बन्ध करता है वह देशावधिमरण है। इसका अभिप्राय यह है एक देश से अथवा सर्व देश से मर्यादा को लिए हुए सादृश्य से विशिष्ट मरण को अवधिमरण कहते हैं।

**4) आद्यन्तमरण-** वर्तमान से यदि भाविमरण असमान होता है तो उसे आद्यन्तमरण कहते हैं। वहाँ से वर्तमान का प्राथमिक मरण कहा जाता है। उसका अन्त अर्थात् विनाश जिस उत्तरमरण में होता है उसे आद्यन्त मरण कहते हैं। वर्तमान में जिस प्रकार के प्रकृति, स्थिति, अनुभव और प्रदेश द्वारा मरण को प्राप्त होता है यदि एकदेश या सर्वदेश से उस प्रकार को प्राप्त नहीं होता तो वह आद्यन्तमरण है।

**5) बालमरण-** बाल के मरण को बालमरण कहते हैं। वह बाल पाँच प्रकार का है- अव्यक्त बाल, व्यवहारबाल, ज्ञानबाल, दर्शनबाल, चारित्रबाल। अव्यक्त छोटे बच्चे को कहते हैं। जो धर्म, अर्थ और काम को नहीं जानता और न जिसका शरीर ही उनका आचरण करने में समर्थ है वह अव्यक्तबाल है। जो लोक, वेद और समय सम्बन्धी व्यवहारों को नहीं जानता अथवा इन विषयों में शिशु समान है वह व्यवहारबाल है। अर्थ और तत्व के श्रद्धान से रहित सब मिथ्या दृष्टि दर्शनबाल है। वस्तु को यथार्थ रूप से ग्रहण करने वाले ज्ञान से जो हीन हैं वे ज्ञानबाल हैं। जो चारित्रपालन किये बिना जीते हैं वे चारित्रबाल हैं। इन बालों के मरणों को बालमरण कहते हैं। अतीतकाल में ये बालमरण

अनन्त हो चुके हैं, अनन्त जीव इस मरण को प्राप्त होते हैं। यहाँ इनमें से दर्शनबाल का ग्रहण किया है, अन्य बालों का नहीं, क्योंकि सम्यग्दृष्टि में इतर बालपना रहते हुए भी दर्शन पंडितपना रहता है इसलिए उसके पंडितमरण ही स्वीकार किया है।

संक्षेप से दर्शनबाल का मरण दो प्रकार का है एक इच्छापूर्वक, दूसरा अनिच्छापूर्वक। आग से, धुएँ से, शस्त्र से, विष से, जल से, पर्वत से गिरने से, श्वास के रुकेने से, अतिशीत या अतिगर्मी पड़ने से, रस्सी से, भूख से, प्यास से, जीभ उखाड़ने से, और प्रकृति विरुद्ध आहार के सेवन से बाल पुरुष मरण को प्राप्त होते हैं यह इच्छापूर्वक मरण (आत्मा-हत्या) है अर्थात् ऐसे उपाय स्वयं करके वे मरते हैं।

किसी निमित्त वश जीवन को त्यागने की इच्छा होने पर भी अन्तरंग में जीने की इच्छा रहते हुए काल या अकाल में अध्यवसान आदि से जो मरण होता है वह अनिच्छापूर्वक दर्शनबाल मरण है। जो दुर्गति में जाने वाले हैं, विषयों में अति आसक्त हैं, अज्ञान पटल से आच्छादित हैं, ऋद्धि, रस और सुख के लालची हैं वे इन बाल मरणों से मरण करते हैं। ये बालमरण बहुत तीव्र कर्मों के आस्त्रक के द्वारा हैं, जन्म, जरा, मरण के दुखों को लाने वाले हैं।

**6) पण्डित मरण-** इसके चार भेद हैं, व्यवहार पण्डित, सम्यक्त्व पण्डित, ज्ञान पण्डित और चारित्र पण्डित। जो लोक, वेद और समय के व्यवहार में निपुण हैं वह व्यवहार पण्डित है। अथवा जो अनेक शास्त्रों का ज्ञाता है सेवा आदि बौद्धिक गुणों से युक्त है वह व्यवहारपण्डित है। क्षायिक, क्षायोपशमिक अथवा औपशमिक सम्यग्दर्शन से जो युक्त है वह दर्शनपण्डित है। जो मति आदि पाँच प्रकार के सम्यज्ञान रूप से परिणत है वह ज्ञान पंडित है। जो सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात चारित्र में से किसी एक चारित्र का पालक है वह चारित्रपण्डित है। यहाँ ज्ञान, दर्शन और चारित्र पण्डितों का अधिकार है। व्यवहार पण्डित मिथ्यादृष्टि का तो बालमरण होता है और सम्यग्दृष्टि का मरण दर्शनपण्डित मरण है। वह दर्शनपण्डित मरण नरक में भवनवासी देवों में, वैमानिक देवों में, ज्योतिष्क देवों में, व्यन्तर देवों में और द्वीप समुद्रों में होता है। ज्ञानपण्डित मरण भी इन्हीं में होता है। किन्तु केवलज्ञान और मनः पर्यायज्ञान पण्डितमरण मनुष्य लोक में ही होता है।

**7) ओसण्णमरण-** निर्वाण मार्ग पर प्रस्थान करने वाले संयमियों के संघ से हीन हो गया है उसे निकाल दिया गया है वह ओसण्ण कहलाता है। उसके मरण को ओसण्णमरण कहते हैं। ओसण्ण के ग्रहण से पार्श्वस्थ, स्वच्छन्द, कुशील और संसक्तों का ग्रहण होता है। कहा भी है- पार्श्वस्थ, स्वच्छन्द कुशील और संसक्त ये ओसण्ण होते हैं क्योंकि ये मोक्ष के लिए प्रस्थान करने वाले साधु संघ से बाहर होते हैं।

ऋद्धियों के प्रेमी, रसों में आसक्त, दुःख से भीत, सदा दुःख से कातर, कमालों में संलग्न, आहारदि संज्ञा के अधीन, पाप वर्धक शास्त्रों के अभ्यासी, तेरह उकार की क्रियाओं में आलसी, सदा संक्लेश युक्त चित्त वाले, भोजन और उपकरणों से प्रतिबद्ध, निमित्तशास्त्र, मंत्र, औषध आदि से आजीविका करने वाले, गृहस्थों का वैयाक्त्य करने वाले, गुणों से हीन, गुप्तियों और समितियों में उदासीन, संवेग भाव में मात्र, दस प्रकार के धर्म में मन को न लगाने वाले तथा सदोष चारित्र वाले मुनियों को अवसरन कहते हैं। इस प्रकार से रहित रहते हुए ये बेचारे मरकर हजारों भवों में भ्रमण करते हैं। किन्तु दुःख उठाते-उठाते पार्श्वस्थ रूप में चिरकाल तक विहार करके अन्त में आत्मा की शुद्धि करके यदि मरते हैं तो प्रशस्तमरण ही होता है।

**8) बालपण्डित मरण-सम्यग्दृष्टि संयतासंयत के मरण को बालपण्डित मरण कहते हैं** क्योंकि यह बाल और पण्डित दोनों ही होता है। इनके स्थूल हिंसा आदि से विरति रूप चारित्र और दर्शन और दोनों होते हैं अतः यह चारित्रपण्डित भी है और दर्शनपण्डित भी है। किन्तु कुछ सूक्ष्म असंयम से निवृत नहीं होता, इसलिए चारित्र में बाल है।

यह बालपण्डित मरण गर्भज और पर्याप्तक तिर्यकों तथा मनुष्यों में होता है। दर्शनपण्डित मरण तो इनमें भी होता है और देव नारकियों में भी होता है।

**9) सश्ल्यमरण-** सश्ल्य मरण के दो भेद हैं क्योंकि शल्य के दो भेद हैं- द्रव्यशल्य और भावशल्य। मिथ्यादर्शन, माया और निदान इन शल्यों का कारण जो कर्म है उस कर्म को द्रव्यशल्य कहते हैं। द्रव्यशल्य के साथ मरण पाँचों स्थावरों, असंज्ञियों और त्रसों का होता है।

**शङ्का-** द्रव्यशल्य तो सर्वत्र है तब स्थावरों के क्यों कहा ?

**समाधान-** यहाँ भावशल्य से रहित द्रव्य शल्य की अपेक्षा है। यह कहा है कि सम्यग्दर्शन के अतिचारों का कारण दर्शनशल्य है और सम्यग्दर्शन स्थावरों में तथा विकलेन्द्रिय त्रसों में नहीं होता।

आगामीकाल में यही होना चाहिए इस प्रकार के मन के उपयोग को निदान कहते हैं। असंज्ञियों में इस प्रकार का निदान नहीं होता। मोक्षमार्ग को दोष लगाना, मार्गका नाश करना, मिथ्यामार्ग का कथन करना या मोक्षमार्ग का कथन न करना, और जो मोक्षमार्ग हैं उनके भेद डालना ये मिथ्यादर्शनशल्य हैं। उनमें से निदान के तीन भेद हैं- प्रशस्त, अप्रशस्त और भोगकृत। परिपूर्ण संयम की आराधना करने की इच्छा से परभव में पुरुषत्व आदि प्रार्थि की प्रार्थना प्रशस्त निदान है। मानकषाय से प्रेरित होकर आगामी भव से उच्चकुल, सुन्दर रूप आदि की प्रार्थना अप्रशस्त निदान है। अथवा क्रोध के आवेश में आकर अपने शत्रु के वध की प्रार्थना, जैसे वशिष्ठ ने उग्रसेन के

विनाश की प्रार्थना की थी, अप्रशस्त निदान है। इस व्रतशील आदि के प्रभाव से इस भव में और परभव में इस प्रकार के भोग मुझे प्राप्त हों, इस प्रकार मन के संकल्प को भोगनिदान कहते हैं। असंयम सम्यादृष्टि अथवा संयतासंयत के निदानशल्य होता है। चिरकाल तक पार्श्वस्थ आदि साधु के रूप में विहार करने के पश्चात् भी जो आलोचना किये बिना मर जाता है उसका वह माया शल्य मरण होता है। ऐसा मरण संयत, संयतासंयत और अविरत सम्यादृष्टि में होता है।

**10)बलायमरण -** जो विनय वैयावृत्त्य आदि में आदर भाव नहीं रखता, प्रशस्त योग के धारण में आलसी है, प्रमादी है, ब्रतों में समितियों में और गुस्तियों में अपनी शक्ति को छिपाता है, धर्म के चिन्तन में निन्द्रा के वशीभूत जैसा है, उपयोग न लगाने से ध्यान नमस्कार आदि से दूर भागता है, उसका मरण बलायमरण है। दर्शन पण्डित, ज्ञान पण्डित, और चारित्र पण्डित के बलायमरण भी सम्भव है। ओसण्णमरण और सशल्यमरण में नियम से बलायमरण होता है। उनके अतिरिक्त भी बलायमरण होता है। जो शल्यरहित विरक्त होकर चिरकाल तक रत्नत्रय का पालन करता है किन्तु मरते समय संस्तर पर आरूढ़ होकर शुभोपयोग से दूर भागता है, उसके शुभभाव के स्थिर न रहने से बलायमरण होता है।

**11) वसट मरण-** आर्त और रौद्रध्यान पूर्वक मरण को वसटमरण कहते हैं। उनके चार भेद हैं- इन्द्रियवसटमरण, वेदनावसटमरण, कसायवसटमरण और नोकसायवसटमरण। इन्द्रियवसटमरण इन्द्रियों के विषयों की अपेक्षा पाँच प्रकार का है। देवों, मनुष्यों, पशु-पक्षियों और अजीवों के द्वारा किये गये तत, वितत, घन और शुष्ठिर मनोज्ञ शब्दों में शब्दों में राग और अमनोज्ञ शब्दों में द्वेष करते हुए मरण होता है। यह श्रोत इन्द्रियवसटमरण है। चार प्रकार के आहार में राग या द्वेष करते हुए मरण रसनेन्द्रियवसटमरण है। पूर्वोक्तदेव मनुष्य आदि की गन्ध में राग-द्वेष करते हुए मरण ग्राणेन्द्रियवसटमरण है। उन्हीं के रूप आकार आदि में राग-द्वेष करने वाले का मरण स्पर्शनेन्द्रियवसटमरण है। इस प्रकार इन्द्रिय और मन के वश से होने वाले आर्तध्यानपूर्वक मरण के भेद हैं।

वेदनावसटमरण के संक्षेप से दो भेद हैं- सातवेदनावशार्तमरण और असातवेदनावशार्तमरण। शरीरिक अथवा मानसिक दुःख में उपयोग रहते हुए होने वाले मरण को दुःखशार्तमरण कहते हैं। अर्थात् जो दुःख से मोह को प्राप्त हुआ उसका मरण दुःभयशार्तमरण है। तथा शरीरिक अथवा मानसिक सुख में उपयोग रहते हुए होने वाला मरण सातवशार्तमरण है।

कषाय के भेद से कषायवशार्तमरण के चार भेद होते हैं। अपने में, दूसरे में

अथवा दोनों में मारने के लिए उत्पन्न हुआ क्रोध मरण का कारण होता है। वह क्रोधवशार्तमरण है। मानवशार्तमरण के आठ भेद हैं-कुल, रूप, बल शास्त्र, ऐश्वर्य, लाभ, बुद्धि अथवा तप से अपने को बड़ा मानते हुए मरण होने की अपेक्षा से आठ भेद होते हैं। मैं अति प्रसिद्ध विशाल उच्चकुल में उत्पन्न हुआ हूँ ऐसा मानते हुए होने वाले मरण को कुलमानवश आर्तमरण कहते हैं। मेरा शरीर सशक्त पाँच इन्द्रियों से पूर्ण है, तेजस्वी और नववौन से सम्पन्न है, मेरा रूप समस्त जनता के चित्त को मर्दन करता है, ऐसी भावना होते हुए जो मरण होता है वह रूप वश आर्तमरण है। मैं वृक्ष पर्वत आदि को उखाड़ने में समर्थ हूँ, लड़ने में समर्थ हूँ, मेरे साथ मित्रों का बल है, इस प्रकार बल के अभिमान को धारण करते हुए होने वाला मरण बलमानवश आर्तमरण है। मैं बहुत परिवार वाला हूँ, मेरा शासन बहुतों पर है इस प्रकार ऐश्वर्य के मानसे उन्मत्त का मरण ऐश्वर्यमान-वशार्त मरण है। मैंने लोक, वेद, समय और सिद्धान्त सम्बन्धी शास्त्रों को पढ़ा है इस प्रकार शास्त्रों के मान से उन्मत्त मरण श्रुतमानवश आर्तमरण है। मेरी बुद्धि तीक्ष्ण है, सब विषयों में उसकी बेरोक गति है इस प्रकार प्रज्ञा के मद से मत्त के मरण को प्रज्ञामानवश आर्तमरण कहते हैं। व्यापार करने पर मुझे सर्वत्र लाभ होता है इस प्रकार लाभ का मान करते हुए होने वाले मरण को लाभ मानवशार्तमरण कहते हैं। मैं तप करता हूँ, तपश्चरण में मेरे समान दूसरा नहीं है। ऐसा संकल्प करते हुए होने वाले मरण को तपमानवशार्तमरण कहते हैं।

माया के पाँच भेद हैं- निकृति, उपधि, सातिप्रयोग, प्रणधि और प्रतिकृत्तन। दूसरों की गुप्त बातों की खोज में कुशलता, तथा धन अथवा किसी कार्य की अभिलाषा वाले को ठगना निकृति है। समीचीन भाव को छिपाकर धर्म के बहाने से चोरी आदि दोषों में प्रवृत्ति को उपधि नामक माया कहते हैं। अर्थ (धन) के विषय में झगड़ा करना, अपने हाथ में रखे द्रव्य को हर लेना, प्रयोजन के अनुसार दोष लगाना या प्रशंसा करना सातिप्रयोग माया है। असली वस्तु में उसके समान नकली वस्तु मिलाना, कमती बढ़ती तोलना, मिलावट के द्वारा द्रव्य का विनाश करना ये प्रणधिमाया है। आलोचना करते समय दोषों को छिपाना प्रतिकृत्तन माया है। इस प्रकार के मायाचार पूर्वक होने वाले मरण को मायावशार्त मरण कहते हैं। उपकरणों में, खान-पान के क्षेत्रों में, शरीर में निवास स्थानों में इच्छा और ममत्व रहते हुए होने वाले मरण को लोभवशार्तमरण कहते हैं। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, और पुरुषवेद को लेकर जिसकी बुद्धि मूढ़ हो गई है उसका मरण नोकषायवशार्तमरण है। नोकषायवशार्तमरण से मरा हुआ प्राणी मनुष्य योनि, तिर्यज्ज्वयोनि, तथा असुर, कन्दर्प और किल्विषजाति के देवों में उत्पन्न होता है। मिथ्यादृष्टि के होने वाला यही मरण

बालमरण होता है। दर्शनपंडित, अविरतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत के भी वशार्तमरण होता है। उनका मरण बालपंडित मरण अथवा दर्शनपंडित मरण होता है।

**12) पिप्पणास-मरण (13) गिद्धपुष्ट मरण-** पिप्पणास और गिद्धपुष्ट नामक के दो मरण ऐसे हैं जिनका निषेध भी नहीं है अनुज्ञा भी नहीं है। दुर्भिक्ष में, भयानक जंगल में, पूर्वशत्रु का भय होने पर, या दुष्ट राजा का भय होने पर, चोर का भय होने पर, तिर्यञ्चकृत उपसर्ग होने पर अकेले सहन करना अशक्य है, या ब्रह्मचर्यव्रत का विनाश आदि दूषण चारित्र में होने पर विरक्त और पाप से डरने वाला साधु कर्मों का उदय उपस्थित जानकर उसे सहरें में असमर्थ होने से उससे निकलने का उपाय न होने पर पाप कर्म करने से डरता हुआ, साथ ही विराधना पूर्वक मरण से डरता हुआ विचारता है इस काल में इस प्रकार के कारण उपस्थिति होने पर कैसे कुशल रह सकती है, यदि उपसर्ग के भय से डरकर संयम से भ्रष्ट होता हूँ तो संयम से भी भ्रष्ट और दर्शन से भी भ्रष्ट होता है। और बिना संकलेश के वेदना को सहन कर नहीं सकता। तब मैं रत्नत्रय के आराधक से डिग जाऊँगा, ऐसी निश्चित मति करके सम्यक्त्व और चारित्र में विशुद्ध, धैर्यशाली, ज्ञानी से सहायता लेने वाला वह साधु किसी निदान के बिना अर्हन्त के पास में आलोचना प्रायश्चित्त लेकर शुभलेश्या पूर्वक श्वासोच्छ्वास का निरोध करता है। उसे विप्पणास मरण कहते हैं। और शस्त्रग्रहण से होने वाले मरण को गिद्धपुष्ट कहते हैं।

मरण के भेदों का यह प्रदर्शन सर्वत्र कर्तव्य रूप से किया जाता है। किन्तु प्रायोपगमन, इंगिणी-मरण और भक्तप्रत्याख्यान ये तीन ही मरण उत्तम हैं, पूर्व पुरुषों ने इनका पालन किया है। इस प्रकार संक्षेप से पूर्व आगम के अनुसार सतरह मरणों का व्याख्यान यहाँ किया।

#### 5 प्रकार के मरण-

पंडिदपंडिदमरणं पडिदयं बालपंडिदं चेव।

बालमरणं चउत्थं पंचमयं बालबालं च ॥२६

पंडितपंडितमरण, पंडितमरण, बालपंडितमरण, चौथा बाल मरण और पाँचवा बाल-बालमरण, ये पाँच मरण हैं।

**शंडा-** यदि भव पर्याय के विनाश को मरण कहते हो तो उनका भेद कैसा? भवपर्याय तो अनेक हैं और उनका विनाश मरण है तब मरण के भेद उतने क्यों नहीं होंगे। अतः मनुष्य में मरण के पाँच प्रकार ठीक नहीं हैं। एक जीव की भी भवपर्याय अनन्त होती हैं तब नाना- जीवों की अपेक्षा पाँच भेद कैसे संभव हैं? यदि कहोगे कि प्राणी का प्राणों से वियोग मरण है तो वह सामान्य से एक ही प्रकार का है। प्राण भेद की अपेक्षा लेना हो तो दस भेद हो सकते हैं? यदि उदय प्राप्त कर्म पुद्गलों के गलने का नाम मरण है तो कर्म पुद्गलों का गलन तो प्रति समय होता है अतः पाँच भेद नहीं बनते?

**तामाधान-गुण भेद की अपेक्षा जीवों के पाँच भेद करके उनके सम्बन्ध से मरणके पाँच भेद कहे हैं।** अन्य व्याख्याकार पंडितपंडितमरण आदि पाँच मरणों को प्रशस्ततम, प्रशस्तर, ईषत् प्रशस्त, अविशिष्ट और अविशिष्टतर कहते हैं। हम उनसे पूछते हैं कि पंडित शब्द का प्रशस्त अर्थ में प्रयोग कहाँ देखा है जिससे आप ऐसी व्याख्या करते हैं तथा यह व्याख्यान अन्य आगमों के अनुकूल नहीं है।

आगम में कहा है- व्यवहार में, सम्यक्त्व में, ज्ञान में और चारित्र में पंडित के मरण को पंडित मरण कहते हैं अतः उसके चार भेद हैं। इस प्रकार के चार प्रकार पंडित कहे हैं। उनके मध्य में जिसका पाण्डित्य, ज्ञान, दर्शन और चारित्र में अतिशय शाली है उसे पंडितपंडित कहते हैं। उसके पाण्डित्य के प्रकर्ष से रहित जिसका पाण्डित्य होता है उसे पंडित कहते हैं। पूर्व में व्याख्यात बालपन और पाण्डित्य जिसमें होते हैं वह बालपंडित होता है। उसका मरण बालपंडितमरण है। और जिसमें चारों प्रकार के पाण्डित्य में से एक भी पाण्डित्य में एक भी पाण्डित्य नहीं है वह बाल है और जो सबसे हीन है वह बालबाल मरण है।

#### 1) पंडितपंडित मरण-

पंडिदपंडितमरणे खीणकसाया मरंति केवलिणो ।

विरदाविरदा जीवा मरंति तदियेण मरणेण ॥२७

पंडितपंडितमरण से क्षीण कषाय और अयोगकेवली मरते हैं। विरताविरत जीव तीसरे मरण से मरते हैं।

पंडितपंडितमरण मरते हैं' यहाँ पंडितपंडित नामक विशेष मरण को मरते हैं' इस सामान्य मरण के कर्म रूप से कहा है। जैसे बैल के समान पुष्ट को सामान्य पुष्ट शब्द से कहा है। जो 'कषन्ति' अर्थात् आत्मा का धात करती हैं उन्हें कषाय कहते हैं। कषाय शब्द से वनस्पतियों के छाल, पात्र, जड़, और फल का रस कहा जाता है। वह रस जैसे वस्त्रादि के रंग को बदलदेता है इसी प्रकार जीव के क्षमा, मार्दव, आर्जव और सन्तोष नामक गुणों को नष्ट करके अन्यथा कर देते हैं इसलिए क्रोध, मान, माया, लोभ को कषाय कहते हैं। वे कषाय जिनकी क्षीण हो गई हैं - नष्ट हो गई हैं वह क्षीण कषाय होते हैं। कषाय वेदनीय नामक द्रव्य कर्मों का विनाश होने से उनका निमित्त पाकर होने वाली भावकषाय जिनकी नष्ट हो गई है वे क्षीणकषाय कहे जाते हैं। केवल अर्थात् असहाय ज्ञान, जो इन्द्रियाँ, मन, प्रकाश आदि की अपेक्षा न करके एक साथ समस्त द्रव्य-पर्यायों को जानने में समर्थ हैं वह केवलज्ञान है। वह जिनके हैं वे केवली होते हैं। यद्यपि केवली शब्द केवलज्ञान रूप वस्तु सामान्य में प्रवृत्त नहीं होता, तथापि सयोग-केवली का मरण असम्भव होने से अयोगकेवली का ग्रहण होता है। दूसरे व्याख्याकार 'क्षीणकषाय और

'श्रुतकेवली' ऐसा व्याख्यान करते हैं। उनका वह व्याख्यान ठीक नहीं है। श्रुत शब्द के बिना केवली शब्द का प्रयोग किसी भी आगम में समस्त श्रुतधारी के लिए नहीं देखा। यदि शब्द का प्रसिद्ध अर्थ असम्भव ही हो तो जिस किसी तरह अन्य अर्थ किया जा सकता है। जब सम्भव अर्थ प्रतीति सिद्ध है। तो उसे कैसे छोड़ा जा सकता है? दूसरे, पाण्डित्यका प्रकर्ष वहाँ क्षायिकज्ञान, क्षायिकदर्शन और क्षायिक चारित्र की अपेक्षा लिया गया है, वह श्रुतकेवली में नहीं है।

जो स्थूल हिंसा आदि से निवृत्त होने से विरत और सूक्ष्म हिंसा आदि से अनिवृत्त होने से अविरत होते हैं वे जीव विरताविरत होते हैं। यदि वे विरत हैं तो अविरत कैसे हैं और अविरत हैं तो विरत कैसे हैं इस प्रकार के विरोध की आशङ्का नहीं करना चाहिए। अपेक्षा भेद से विरतपने और अविरतपने में विरोध को कोई स्थान नहीं है। जैसे एक द्रव्य में एक ही समय में द्रव्य रूप की अपेक्षा नित्यपना और पर्यायरूप की अपेक्षा अनित्यपना में कोई विरोध नहीं आता। अथवा अप्रत्याख्यानावरण कषायों का क्षयोपशम होने पर स्थूल हिंसा आदि से में विरत हूँ किन्तु सूक्ष्म हिंसादि से विरत नहीं हूँ इस प्रकार का एक ही परिणाम होता है। विरोध तो उनमें होता है जो एक आधार में न रहकर अनेक आधारों में हैं जैसे शतिस्पर्श आदि में विरोध हैं। अस्तु,

द्रव्यप्राण और भावप्राणों को धारण करने से जीव कहे जाते हैं। विरताविरत जीव तीसरे मरण से मरते हैं।

**शंका** - यहाँ तृतीय से यदि वस्तु के परिणामों की वृति का क्रम लेते हैं तो गणना करने पर दोपना या तीनपना प्राप्त होता है। गुणस्थान की अपेक्षा सम्यमित्यादृष्टि गुणस्थान ही तीसरा है, संयतासंयत नहीं है तब कैसे तीसरा कहते हैं। तथा सामान्य की अपेक्षा मरण तो एक ही है तीसरा पना कैसे? विशेष की अपेक्षा अतीत मरण अनन्त है और भाविमरण उससे भी अधिक सम्भव है? समाधान- सूत्र में जिस क्रम से मरणों का निर्देश किया है उसकी अपेक्षा तीसरा लेना चाहिए।

**शंका**- विरताविरत परिणाम विशेषका निर्देश करने से ही जीव द्रव्य का ज्ञान हो जाता है तब गाथा में जीवा पद व्यर्थ है?

**समाधान** - व्यर्थ नहीं है यह मतान्तर की निवृत्ति के लिए है। सांख्यमतवाले मरण को प्रकृति का धर्म मानते हैं। क्योंकि उनके मत में पुरुष सर्वथा नित्य है। किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि आत्मा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यात्मक है।

**शंका**- पण्डितपण्डितमरण के अनन्तर पण्डितमरण आता है। उसे छोड़कर तीसरे मरण का स्वामी क्यों कहा, क्रम का उल्लंघन करने का प्रयोजन क्या है यह कहना चाहिए?

**समाधान-** उत्कृष्ट और जघन्य पण्डितत्व के मध्य में रहने वाला पण्डितत्व है यह कहने के लिए दोनों अवधियों को बतलाया है। अथवा पण्डित मरण के सम्बन्ध में बहुत कहना है इसलिए उसे अलग रख कर थोड़ा कथन होने के कारण बाल पण्डितमरण को ही पहले कहा है।

### १) पण्डित मरण-

पादोपगमण मरणं भक्तपइण्णा य इंगिणी चेव ।

तिविहं पंडितमरणं साहुस्स जहुतचारिस्स ॥२८

पादोपगमण मरण, भक्तप्रतिज्ञा और इंगिणीमरण इस प्रकार पण्डितमरण तीन प्रकार का है। वह शास्त्र में कहे अनुसार आचरण करने वाले साधु के होता है।

पाद अर्थात् पैरों से उपगमन पूर्वक होने वाले को पादोपगमण मरण कहते हैं।

शंका- शेष दोनों मरणों में भी पैरों से उपगमन होता है अतः तीन भेद नहीं बनते?

**समाधान-** यह पादोपगमण रुढ़ि रूप से मरण विशेष में प्रवृत्त होता है। इसका लक्षण आगे कहेंगे। रुढ़ि शब्दों में ग्रहण की गई क्रिया शब्द की व्युत्पत्ति के लिए ही होती है। जैसे जो चलती है वह गौ है। इस प्रकार गौ शब्द की व्युत्पत्ति करने पर भी यद्यपि यह व्युत्पत्ति गमन क्रिया को लेकर है किन्तु गौ शब्द से भैंस आदि नहीं कहे जा सकते। अथवा 'पाउगगमणमरण' पाठ है। यहाँ प्रयोग्य शब्द से संसार का अन्त करने के योग्य संहन और संस्थान कहे जाते हैं। उसके गमन अर्थात् प्राप्ति को प्रायोग्यगमन कहते हैं। उसके कारण होने वाले मरण को प्रायोग्यगमन मरण कहते हैं। भज्यते अर्थात् जो सेवन किया जाये वह भक्त है। उसकी 'पइण्णा' अर्थात् त्याग भक्त पइण्णा है। भोजन का त्याग शेष दोनों मरणों में भी सम्भव हैं फिर भी रुढीवश भक्तपइण्णा शब्द मरण विशेष का ही बोधक होता है। इंगिणी शब्द से आत्मा का इंगित अर्थात् संकेत कहा जाता है। अपने अभिप्राय के अनुसार रह कर होने वाले मरण इंगिणीमरण है। इस तरह पण्डितमरण तीन प्रकार है। पण्डितमरण किस के होता है? श्रुत में जिस प्रकारों से कहा है उसी प्रकार आचरण शील साधु के होता है। सभी सदाचार वाले मनुष्य, वे संयमी हो या असंयमी, लोक में साधु शब्द से कहे जाते हैं। इसलिए संयमी का ग्रहण करने के लिए 'यथोक्तचारी' विशेषण दिया है। अपने पैरों से चलकर अर्थात् संघ से निकलकर योग्य देश में आश्रय लेना पादोपगमण है। इसमें न स्वयं अपनी सेवा करता है और न दूसरे से करता है। भक्तप्रतिज्ञामरण में स्वयं भी अपनी वैयावृत्य करता है और दूसरों से भी करता है इंगिणीमरण में अपनी वैयावृत्य स्वयं ही करता है दूसरों से नहीं करता। पादोपगमण को प्रायोपगमण भी कहते हैं और प्रायोपवेशन भी कहते हैं। 'प्राय' का अर्थ संन्यास है।

## ३) बालमरण (४) बाल-बाल मरण-

अविरदसम्मादिद्वी मरंति बालमरणे चउथम्मि ।

मिच्छादिद्वी य पुणो पंचमए बालबालम्मि ॥२९

अविरत सम्यग्दृष्टि चतुर्थ बालमरण में मरते हैं। मिथ्यादृष्टि पाँचवें बाल-बालमरण में मरते हैं। इस गाथा का अर्थ प्रसिद्ध होने से इसकी व्याख्या नहीं करते।

शङ्का- यहाँ शङ्का करते हैं। ग्रन्थकार ने 'क्रम से आराधना को कहूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा की है। वह आराधना दो प्रकार की है- दर्शनाराधना और चारित्राराधना। उनका व्याख्यान न करके मरण के भेद और उनके स्वामीयों का कथन क्यों किया गया? विद्वान गण प्रस्तुत के परित्याग और अप्रस्तुत के कथन को सहन नहीं करते?

समाधान- वीच में मरण का कथन किया है वह अप्रशस्त नहीं है। आराधना होने वाले मरण का ही इस शास्त्र में कथन करना इष्ट है। वही इसका अभिधेय-प्रतिपाद्य विषय है। और आराधक के बिना आराधना होना असम्भव है। अतः स्वामी का भी कथन करना ही चाहिए। यह आचार्य का अभिप्राय है।

❖\*❖

गुणसाधणो पडिच्छदि अप्पडिलेहाए बहुदोसा ॥५१९

सम्यक्त्व आदि गुणों का साधक वह आचार्य राज्य, क्षेत्र, अधिपति, गण, और अपने शरीर की परीक्षा करके क्षपक को ग्रहण करता है। अन्यत्र 'गुणसाधण' पाठ मिलता है। उसके अनुसार आचार्य गुणों की साधना के लिए उद्यत साधुको ग्रहण करता है। उक्त परीक्षा न करने में बहुत दोष हैं।

## प्रकरण-४

## समाधि सम्बन्धी परीक्षा

तो तस्स उत्तम्हे करणुपडिच्छदि विदण्ह ।

खीरोदणदवुग्हाहदुगुछणाए समाधीए ॥५१७

उसके पश्चात् मार्ग को जानने वाले आचार्य क्षपक के रत्नत्रय की आराधना करने में उत्साह की परीक्षा करते हैं कि उसके आराधना करने का उत्साह है या नहीं है। तथा दूध भात आदि द्रव्य को ग्रहण करने में इनकी लोलुपता है या ग्लानि है ऐसी परीक्षा करते हैं। यहाँ दूध भात मनोज्ज आहार का उपलक्ष्ण है। अतः आहार के सम्बन्ध में उसकी परीक्षा करते हैं। यह परीक्षा समाधि के निमित्त की जाती है।

खवयस्सुवसंपण्णस्स तस्स आराधणा अविक्खेवं ।

दिव्वेण णिमित्तेण य पडिलेहदि अप्पमत्तो सो ॥५१८

आराधना के निमित्त से अपने पास आये क्षपक की आराधना निर्विघ्न होने के लिए आचार्य प्रमाद रहित होकर दिव्य निमित्तज्ञान के द्वारा परीक्षा करते हैं कि इसकी आराधना निर्विघ्न होगी या नहीं होगी।

रज्जं खेत्तं अधिवदिगणमप्पाणं च पडिहित्ताणं ।

गुणसाधणो पडिच्छदि अप्पडिलेहाए बहुदोसा ॥५१९

सम्यक्त्व आदि गुणों का साधक वह आचार्य राज्य, क्षेत्र, अधिपति, गण, और अपने शरीर की परीक्षा करके क्षपक को ग्रहण करता है। अन्यत्र 'गुणसाधण' पाठ मिलता है। उसके अनुसार आचार्य गुणों की साधना के लिए उद्यत साधुको ग्रहण करता है। उक्त परीक्षा न करने में बहुत दोष हैं।

उन्हें ही कहते हैं- क्षपक की आहार विषयक तृष्णा दूर हुई है या नहीं, ऐसी परीक्षा यदि नहीं की और क्षपक आहार में तृष्णा रखने वाला हुआ, तो रात दिन आहार की ही चिन्ता करने पर कैसे आराधक हो सकता है। भूख प्यास परीषहों को न सहने से चिल्हा-चिल्हाकर धर्म को दूषित करेगा। आराधना में विघ्न आयेगा या नहीं, इसकी परीक्षा न करके यदि उस विघ्न को दूर नहीं किया जाय तो क्षपक का भी कार्य सिद्ध न हो और स्वयं आचार्य लोगों की निन्दा का पात्र बने। जो आचार्य राज्य क्षेत्र आदि की अच्छे बुरे की परीक्षा करता है वह यदि क्षपक और राज्य आदि का अशुभ देखता है तो उस क्षपक को लेकर अन्य राज्य और अन्य क्षेत्र आदि में चला जाता है। ऐसा करने से वह क्षपक का उपकार करता है। परीक्षा न करने पर यदि राज्य आदि में उत्पात हुआ तो क्षपक और आचार्य दोनों को कष्ट उठाना पड़ता है। यदि गण का अपना अनिष्ट देखता

है तो आचार्य कार्य के प्रारम्भ नहीं करता। अतः बिना परीक्षा किये कार्य करने वाला आचार्य न क्षपक का उपकार करता है और न अपना उपकार करता है।

### समाधि सम्बन्धी संघ से विवार विमर्श -

पडिच्चरए आपुच्छिय तेहिं णिसिद्ट टं पडिच्छदे खवयं ।

तेसिमणापुच्छाए असमाधि होज तिणहंपि ॥1520

आचार्य परिचर्या करने वाले यतियों से पूछता है- वह क्षपक रत्नत्रय की साधना में हमारी सहायता चाहता है। साधु समाधि और वैयावृत्य करना तीर्थकर नामकर्म के बन्ध के कारण हैं यह आप जानते ही हैं। अतः कहिये, हम लोग इस पर अनुग्रह करें या न करें? प्रायः लौकिकजन भी परोपकारी और परोपकार के लिए सदा तत्पर रहने वाले होते हैं। तब यतिजनों का तो कहना ही क्या है? वे तो समस्त निकट भव्यजीवों को गहरे संसार पंक से निकालने में तत्पर रहते हैं। आगम में भी कहा है- ‘आत्म का हित करना चाहिए। यदि शक्य हो तो परहित भी करना चाहिए।’ अतः क्या इसके कल्याण का उद्योग करना चाहिए या नहीं। इस प्रकार आचार्य के पूछने पर यदि वे स्वीकार करते हैं तो आचार्य क्षपक को स्वीकार करते हैं। परिचारक यतियों से न पूछने पर आचार्य, क्षपक और संघ तीनों को ही संकलेश होता है। हम लोगों ने इस क्षपक को स्वीकार नहीं किया ऐसा मानकर यतिगण यदि उसकी विनय या वैयावृत्य न करें तो क्षपक को संकलेश होता है कि ये मेरा कुछ भी नहीं करते। गुरु को भी संकलेश होता है कि मैंने इसका उपकार करना प्रारम्भ किया किन्तु वे इसमें सहायता नहीं करते। परिचारक यतियों को भी संकलेश होता है कि यह कार्य बहुत जनों के करने का है किन्तु हमारा गुरु यह नहीं मानता और न हमारे बलाबल की परीक्षा करता है।

### समाधि सम्बन्धी प्रतिपृष्ठा-

एगो संथारगदो जजड सरीरं जिणोवदेसेण ।

ऐगो सल्लिहंदि मुणी उगोहिं तवेविहाणेहिं ॥1521

एक मुनि तो संस्तर पर चढ़कर जिनेन्द्र के उपदेश से शरीर को आराधना में लगाता है। एक मुनि उग्रतप करके शरीर को कृश करता है।

तदिओ णाणुण्णादो जजमाणस्स हु हवेज वाघादो ।

पडिदेसु दोसु तीसु य समाधिकरणाणि हायन्ति ॥1522

तीर्थकर ने एक निर्यापक आचार्य के द्वारा अनुग्राह्य तीसरे यति की अनुज्ञा नहीं दी है अर्थात् एक आचार्य की देख-रेख में एक साथ एक दो ही मुनि सल्लेखना कर सकते हैं क्योंकि तपरूपी अग्नि में अपने शरीर की आहुति देने वाले मुनि की समाधि में विघ्न आता है। इसका कारण यह है कि यदि दो या तीन क्षपक संस्तर पर पड़ जायें तो

चित्त को समाधान देनेवाली विनय वैयावृत्य आदि में कमी आती है।

तम्हा पडिच्चरण्याणं सम्मदमेयं पडिच्छदे खवयं ।

भणदि य तं आयरियो खवयं गच्छस्स मज्जाम्मि ॥1523

अतः आचार्य एक ही क्षपक को स्वीकार करते हैं जो परिचर्या करने वाले यतियों को इष्ट होता है। तथा आचार्य गण के मध्य में क्षपक को शिक्षा देते हैं जिससे गण भी समाधि को जान जाये।

फासेहि तं चरित्तं सब्वं सुहसीलयं पयहिदूण ।

सब्वं परीसहचमुं अधियासंतो धिदिवलेण ॥1524

हे क्षपक! तुम धैर्य के बल से सम्पूर्ण सुखशीलता को त्यागकर सम्पूर्ण परीषहों की सेना को सहन करते हुए चारित्र को धारण करो। सुखशीलता से चारित्र मन्द होता है क्योंकि सुखशील मुनि भोजन, उपकरण और वसतिका शोधन नहीं करता। जो स्वादिष्ट भोजन का लम्पटी होता है न वह भिक्षा का शोधन करता है और न उपकरण का शोधन करता है। तथा सुखशील मुनि उद्गम आदि दोष का परिहार नहीं करता, उसका मन तो मनोज्ञ भोजन और उपकरण में रहता है। कष्ट न सहकर जिस किसी की वसति में ठहर जाता है।

सदे रूवे गंधे रसे य फासे य णिजिणाहि तुमं ।

सब्वेसु कसमाएसु य णिग्गहपरमो सदा होइ ॥1525

हे यति! तुम शब्द, रूप, गन्ध, रस, स्पर्श इन पाँच इन्द्रियों के विषयों को जीतो।

शङ्का- शब्द आदि इन्द्रियों के विषय हैं उनको जीतना कैसे? उन विषयों में राग बन्ध का कारण है। अतः उनके विरोधी वैराग्य भावना के द्वारा उनको जीतने का उपदेश देना चाहिए?

समाधान- सूत्र उपस्कार सहित होते हैं अतः शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श में जो राग है उसे तुम जीतो ऐसा पद का सम्बन्ध होता है। अथवा जो शब्दादि विषयों के वश में नहीं है उसे जीतने वाला कहते हैं। जैसे जो स्त्री पुरुष की अनुगामिनी नहीं होती उसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि इसने पुरुष को जीत लिया।

समाधि ग्रहण के योग्य काल- हेमन्त ऋतु-

एवं वासारते फासेदूण विविधं तवोकम्मं ।

संथारं पडिवज्जदि हेमंते सुहविहारम्मि ॥1630

इस प्रकार वर्षाकाल में नाना प्रकार के तप करके सुख विहार वाले हेमन्त ऋतु में संस्तर का आश्रय लेता है। हेमन्त ऋतु में अनशन आदि करने पर महान् परिश्रम नहीं

होता, सु वृ पूर्वक हो जाता है इसलिए उसे सुखविहार कहा है।

सब्बपरियाइयस्स य पडिक्कमित्तु गुरुणो णिओगेण ।  
सब्बं समारुहिता गुणसंभारं पविहरिजा ॥631

समस्त ज्ञान दर्शन और चरित्र के अतिचारों से शुद्ध होकर, गुरु के उपदेश से गुणों के समूह को धारण करके क्षपक को समाधि मरण में लगाना चाहिए।

**समाधि-योग्य एवं आयोग्य वस्तिका-**

गंधव्वणट्टजट्टसचक्कजंतगिकमफरुसे य ।  
णत्तियरजया पाडहियडोंबणडरायमग्गे य ॥632

गायनशाला, नृत्यशाला, गजशाला, अश्वशाला, कुम्भकारशाला, यन्त्रशाला, शंख हाथी दाँत आदि का काम करने वालों का स्थान, कोलिक, धोबी, बाजा बजाने वाले, छात्र, नट और राजमार्ग के समीप का स्थान।

वारणकोट्टगकल्लालकरकचे पुष्पदयसमीपे य ।  
एवंविधवसधीए होज समाधीए वाधादो ॥633

वारणशाला, पत्थर का काम करने वालों का स्थान, कलालों का स्थान, दीर्घे वालों का स्थान, पुष्पवाटिका, मालाकारका स्थान, जलाशय के समीप आरा से दीर्घे वालों का स्थान, पुष्पवाटिका, मालाकारका स्थान, जलाशय के समीप आरा से वस्ति के योग्य नहीं है। ऐसी वस्तिका में रहने से समाधि का व्याघात होता है। इन्हीं के विषय मनोज्ञ शब्द रूप आदि के सम्बन्ध से तथा शब्दों की बहुलता है। इन्हीं के विषय में ध्यान में होहले होता है। इसलिए ऊपर कही वस्तिकाओं का निषेध किया है।

पंचिदियप्प्यारो मणसंखोभकरणो जहिं णथि ।  
चिढुदि तहिं तिगुतो ज़ाणेण सुहप्पवत्तेण ॥634

जहाँ मन को संक्षोभ करने वाला पाँचों इन्हीं का अपने विषयों में उत्सुकतपूर्वक गमन संभव नहीं है उस वस्तिका में साधु क्षपक मन, वचन, काय को उत्सुकतपूर्वक ध्यान करता हुआ निवास करता है।

**गुप्त क्रिया समाधि-मरण-**

तथ अविचारभत्तपडणा मरणम्मि होइ आगाढो ।  
अपरक्कमस्स मुणिणो कालम्मि असंपुहत्तम्मि ॥2005पु.871

जब विचार पूर्वक भक्तप्रत्याख्यान करने का समय न रहे, और सहस्र मरण उपस्थित हो जाते हों तो कुछ करने में असमर्थ मुनि अविचार भक्त प्रत्याख्यान स्वीकार करता है।

तथ पढमं णिरुद्धं पिरुद्धंतरयं तहा हवे विदियं ।  
तदियं परमणिरुद्धं एवं तिविदं अवीचारं ॥2006

अविचार भक्तप्रत्याख्यान के तीन भेद हैं- प्रथम निरुद्ध, दूसरा निरुद्धतर और तीसरा परम निरुद्ध।

तस्स णिरुद्ध भणिदं रोगादंकेहिं जो समभिभूदो ।  
जंघाबल परिहीणो परगणगमणम्मि ण समत्थो ॥2007

निरुद्ध किसके होता है, यह कहते हैं-

जो रोग से गस्त है, पैरों में चलने की शक्ति न होने से दूसरे संघ में जाने में असमर्थ है उसके निरुद्ध नामक अतिचार प्रत्याख्यान होता है।

जावय बलविरियं से सो विहरदि ताव णिप्पडीयारो ।  
पच्छा विहरदि पडिजग्गिजंतो तेण सगणेण ॥2008

जब तक उसमें शक्ति रहती है तब तक वह अपने संघ में रहते हुए किसी से परिचर्या नहीं करता। पीछे शक्तिहीन होने पर अपने संघ द्वारा परिचर्या करता हुआ विहरता है।

इय सण्णिरुद्धमरणं भणियं अणीहारिमं अवीचारं ।  
सो चेव जधाजोग्गं पुव्वुत्तविधी हवदि तस्स ॥2009

पैरों में चलने की शक्ति न होने से तथा रोग से ग्रस्त होने के कारण जो अपने ही संघ में निरुद्ध है- रुका है उसके मरण को निरुद्धमरण कहते हैं। इस प्रकार निरुद्धमरण का स्वरूप कहा है। सविचार भक्तप्रत्याख्यान में जिस प्रकार संघ आदि का त्याग किया जाता है वह इसमें संभव न होने से यह मरण परित्याग से रहित है और इसमें अनियत विहार आदि विधि का विचार न होने से यह विचार है। अर्थात् अपने ही संघ में आचार्य के समीप में दीक्षा लेकर उनका अपने दोष कहकर अपनी निन्दा और गर्हा करता है, प्रतिक्रमण करता है, प्रायश्चित्त लेता है और जब तक शक्ति रहती है तब तक दूसरे की सहायता के बिना अपनी आराधनाओं का पालन करता है।

दुविधं तं पि अणीहारिमं पगासं च अप्पगासं च  
जणणादं च पगासं इदरं च जणेण अणणादं ॥2010

वह अनिहार नामक भक्तप्रत्याख्यान, जिसमें अपना संघ नहीं छोड़ा जाता है, और इसलिए जिसे स्वगणस्थ भी कहा जाता है, दो प्रकार हैं- एक प्रकाशरूप और दूसरा अप्रकाशरूप। जो लोगों के द्वारा ज्ञात होता है वह प्रकाशरूप है और जिसकी लोगों को खबर नहीं होती, वह अप्रकाश रूप है।

खवयस्य चित्तसारं खित्तं कालं पङ्क्त्व सजणं वा ।  
अण्णम्मि य तारिसयम्मि कारणे अप्पगासं तु ॥2011

क्षपक के मनोबल, क्षेत्र, काल अथवा स्वजन तथा इस प्रकार के अन्य कारण

के होने पर उसे दृष्टि में रखकर अप्रकट भक्तप्रत्याख्यान होता है। अर्थात् यदि क्षपक भूख प्यास आदि के परिषह सहने में असमर्थ होता है, या वसति एकान्त में नहीं होती, या ग्रीष्म आदि ऋतु होती है, या परिवार के लोग विघ्न कर सकते हैं तो समाधि को प्रकट नहीं किया जाता है।

बालग्निवगधमहिसगवरिंछपडिणीय तेण मिच्छेहिं ।  
मुच्छाविसूचियादीहिं होज सज्जो हु वावत्ती ॥2012

### निरुद्ध समाधि की विधि

सर्प, आग, व्याघ्र, भैंसा, हाथी, रीछ, शत्रु, चोर, म्लेच्छ, मूर्छा या विसूचिका आदि रोग से यदि तत्काल मरण उपस्थिति हो।

जाव ण वाया किखयदि बलं च विरियं च जाव कायम्मि ।  
तिव्वाए वेदणाए जाव य चित्तं ण विकिखतं ॥2013

तो जब तक बोली बन्द न हो, जब तक शरीर में बल और शक्ति रहे, और जब तक तीव्र वेदना के कारण चित्त व्याकुल न हो।

णच्चा संवट्ठिंतमाउगं सिग्धमेव तो भिक्खू।

गणियादिणं सणिणहिदाणं आलोच्चए सम्मं ॥2014

साधु, अपनी आयु को शीघ्र ही समाप्त होता है यह जानकर जो निकटवर्ती आचार्य आदि हों उनके सन्मुख अपने दोषों की सम्यक्रूप से आलोचना करे। तथा रत्नत्रय की आराधना में तत्पर होता हुआ वसति, संस्तर, आहार, उपधि, शरीर और परिचारक कों से ममत्व त्याग कर दे। बल और वीर्य के क्षीण होने से जिनके प्रदेश अन्य संघ में जाने में अत्यन्त असमर्थ होते हैं उन्हें निरुद्धतर कहते हैं।

एवं णिरुद्धदरयं विदियं अणिहारिमं अवीचारं ।

सो चेव जथाजोगं पुव्वत्तविधि हवदि तस्स ॥2015

इस प्रकार विहार रहित अत्यन्त निरोध रूप अविचार भक्तप्रत्याख्यान के दूसरे भेद निरुद्ध का कथन किया। पूर्व में भक्तप्रत्याख्यान की जो विधि कही है वही विधि यथा योग्य यहाँ भी जानना।

वालादिएहिं जड़या अकिखता होज भिक्खुणो वाया ।

तड़या परमणिरुद्धं भणिदं मरणं अवीचारं ॥2016

जब पूर्वोक्त सर्प आदि से डसे जाने के कारण क्षपक की वाणी नष्ट हो जाती है, वह बोल नहीं सकता तब उसके परम निरुद्ध नामक अविचार भक्तप्रत्याख्यान होता है। यहाँ परम शब्द से वाणी का रुकना कहा है।

णच्चा संवट्ठिंतमाउगं सिग्धमेव तो भिक्खू।

अरहंतसिद्धसाहृण अंतिगं सिग्धमालोचे ॥2017

तब वह साधु शीघ्र ही अपनी आयु को समाप्त होती हुई जान अर्हन्तों, सिद्धों और साधुजनों के पास में तत्काल आलोचना करे।

आराधणाविधी जो पुब्वं उववणिणदो सवित्थारो ।

सो चेव जुज्माणो एथ विही होदि पादब्बो ॥2018

पूर्व में जो आराधना की विधि विस्तार पूर्वक कही हैं वही यहाँ भी यथायोग्य जानना।

एवं आसुक्कारमरणे वि सिज्जांति केइ धुदकम्मा ।

आराधयितु केइ देवा वेमाणिया होंति ॥2019

इस प्रकार सहसा मरण होने पर भी कोई-कोई मुनि कर्मों को नाश करके मुक्त होते हैं और कोई आराधना करके वैमानिक देव होते हैं।

आराधणाए तथ दु कालस्स बहुत्तणं ण हु पमाणं ।

बहुवो मुहुत्तमत्ता संसारमहण्णवं तिण्णा ॥2020

थोडे ही समय में मोक्ष कैसे हो सकता है ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए; क्योंकि आराधना में काल का बहुत पना प्रमाण नहीं है। बहुत से मुनि एक मुहूर्त मात्र में आराधना करके संसार समुद्र को पार कर गये हैं।

खणमेत्ते ण अणादियमिच्छादिङ्गी वि वद्धणो राया ।

उसहस्स पादमूले संबुज्जित्ता गदो सिद्धिं ॥2021

अनादि मिथ्यादृष्टि भी वर्द्धन नाम का राजा भगवान् ऋषभदेव के पाद मूल में बोध को प्राप्त होकर मोक्ष को गये।

सोलस तित्थयराणं तित्थुप्पणस्स पड्डमदिवसम्मि ।

सामण्णणाणसिद्धी भिण्णमुहुत्तेण संपण्णा ॥2022

भगवान् ऋषभदेव से शान्तिनाथ तीर्थकर्प र्यन्त सोलह तीर्थकर्मों के तीर्थ की उत्पत्ति होने के प्रथम दिन ही बहुत से साधु दीक्षा लेकर एक अन्तमुहूर्त में केवलज्ञान को प्राप्त कर मुक्त हुए।

इंगिनी मरण समाधि-मरण-

पव्वज्ञाए सुद्धो उवसंपज्जितु लिंगकप्प च ।

पवयणमोगाहिता विणयसमाधीए विहरित्ता ॥2025

जो दीक्षा ग्रहण के योग्य है वह निर्ग्रथ लिंग धारण करके श्रुत का अभ्यास करे तथा विनय और समाधि में विहार करे। दीक्षा ग्रहण योग्य से अर्हता का कथन किया

है, लिंग की सूचना की है। और श्रुताभ्यास से शिक्षा का ग्रहण किया है। इस प्रकार भक्त प्रत्याख्यान में जो कहा था उसी को यहाँ कहा है।

**णिप्पादित्ता सगणं इंगिणिविधिसाधणाए परिणमिया ।**

**सिदिमारुहितु भाविय अप्पाणं सल्लिहित्ताणं ॥2026**

अपने संघ को इंगिणीमरण की विधि साधना में योग्य करके अपने चित्त में यह निश्चय करे कि मैं इंगिणीमरण की साधना करूँ गा। फिर शुभ परिणामों की श्रेणि पर आरोहण करके तप आदि की भावना करे और अपने शरीर और कषायों को कृश करे।

**परियाङ्गमालोचिय अणुजाणित्ता दिसं महजणस्स ।**

**तिविधेण खमावित्ता सवालवुहाउलं गच्छ ॥2027**

**अणुसट्टि दादूण य जावज्जीवाय विष्पओगच्छी ।**

**अब्भदिगजादहासो णीदि गणादो गुणसमग्गो ॥2028**

रत्नत्रय में लगे दोषों की क्रम से आलोचना करे और अपने स्थान पर अन्य आचार्य की स्थापना करके उन्हें सब बतला दे। तथा चतुर्विधि वृद्ध मुनियों से भरे अपने गच्छ को शिक्षा देकर जीवन पर्यन्त के लिए संघ से अलग होने की इच्छा करता हुआ प्रसन्न होता है कि मैं कृतार्थ हुआ और इस प्रकार वह सम्पूर्ण गुणों से विशिष्ट होकर मुनिसंघ से चला जाता है।

**एवं च णिक्कमित्ता अंतो बाहिं व थंडिले जोगे ।**

**पुढवीसिलामए वा अप्पाणं णिज्जवे एक्को ॥2029**

इस प्रकार संघ से निकलकर गुफा आदि के अन्दर या बाहर जीवरहित तथा समान रूप से ऊँचे कठिन भूमिप्रदेश में पृथ्वी रूप संस्तर पर या शिलामय संस्तर पर एकाकी आश्रय लेता है। अपने शरीर के सिवाय उसका अन्य कोई सहायक नहीं होता है।

**पुव्वुत्ताणि तणाणि य जाचित्ता थंडिलम्मि पुव्वुत्ते ।**

**जदणाए संथरित्ता उत्तरसिरमध्व पुव्वसिरं ॥2030**

**पाचीणाभिमुहो वा उदीचिहुत्तो व तत्थ सो ठिच्चा ।**

**सीसे कदंजलिपुडो भावेण विसुद्धलेस्सेण ॥2031**

**अरहादि अंतिगं त्तो किच्चा आलोचणं सुपरिसुद्धं ।**

**दंसणाणाणचरित्तं परिसारे दूण णिस्सेसं ॥2032**

वह गाँव या नगर में जाकर तृणों की याचना करता है जो तृण छिद्र रहित जनुरहित, कोमल तथा शरीर की स्थिति के लिए साधना मात्र और प्रतिलेखना के योग्य होने चाहिये उन तृणों को वह उक्त भूमि प्रदेश पर प्रतिलेखना पूर्वक सावधानता से

पृथक्-पृथक् करके फैला देता है। वह भूमिप्रदेश भी प्रकाश सहित, विस्तीर्ण, छिद्र तथा जनुरहित होना चाहिये। उस पर संस्तर ऐसा होना चाहिए जिसमें सिर पूर्वदिशा या उत्तर दिशा की ओर रहे। तब सिर से लेकर पैर तक शरीर का सावधानी से परिमार्जन करके पूरब या उत्तर की ओर मुख करके उसे संस्तर पर बैठता है और हाथों की अंजली बनाकर मस्तक से लगाता है तथा विशुद्ध लेश्या पूर्वक अर्हन्त आदि के सामने अपने दोषों की आलोचना करके सम्यादर्शन, सम्यज्ञान और सम्यक्चारित्र को पूर्ण रूप से निर्मल करता है।

**सब्वं आहारविधिं जावज्जीवास वोसरित्ताणं ।**

**वोसरिदूण असेसं अब्भंतरबाहिरे गर्थे ॥2033**

समस्त प्रकार के आहार के विकल्प को जीवनपर्यन्त के लिए त्याग देता है तथा समस्त अन्यन्तर और बाह्य परिग्रह को त्याग देता है।

**सब्वे विणिजिणिंतो परीषहे धिदिबलेण संजुत्तो ।**

**लेस्साए विरुज्जांतो धर्मं ज्ञाणं उवणमित्ता ॥2034**

धैर्य के बल से युक्त वह क्षपक सब परीषहों को जीतता है और लेश्या विशुद्धि से सम्पन्न हो, धर्मध्यान करता है।

**प्रायोगपगमन समाधि-मरण-**

इस इंगिणीमरण का विस्तार और संक्षेप से विधिपूर्वक कथन किया। आगे प्रायोगपगमन का संक्षेप से कथन करेंगे। ऊपर इंगिणीमरण की जो विस्तार से विधि कही है वही सब विधि प्रायोगपगमन मरण की होती है। किन्तु इतना विशेष है कि प्रायोगपगमन में तृणों के संथरे का-तृणशश्या का निषेध है। क्योंकि उसमें स्वयं अपने से और दूसरों से भी सब प्रकार का प्रतीकार करना कराना निषिद्ध है। भक्तप्रत्याख्यान में तो अपनी सेवा स्वयं भी कर सकता है और दूसरों से भी करा सकता है। इंगिणी में अपनी सेवा स्वयं कर सकता है, दूसरों से नहीं करा सकता किन्तु प्रायोगपगमन में अपनी सेवा न स्वयं करता है और न दूसरों से कराता है। यही इन तीनों में भेद है। यतः जो अपने शरीर को सम्यक् रूप से कृश करता है अर्थात् अस्थि चर्ममात्र शेष रहता है वही प्रायोगपगमन मरण करता है। अतः मल मूत्र के स्वयं या दूसरे के द्वारा त्याग कराने का प्रश्न ही नहीं रहता। यदिकोई उन्हें पृथ्वी, जल, तेज, वनस्पति और त्रस आदि जीवनिकायों में फेंक देता है तो शरीर से ममत्व त्यागकर अपनी आयु के समाप्त होने तक वहीं पड़े रहते हैं। यदि कोई उनका अभिषेक करे गन्ध पुष्प आदि से पूजा करे तब भी शरीर से ममत्व त्याग कर न रोष करते हैं, न प्रसन्न होते हैं और न उसे ऐसा करने से रोकते हैं। शरीरसे ममत्व का त्याग करने वाला वह प्रायोगपगमन का धारी क्षपक जिस क्षेत्र में जिस प्रकार से शरीर का कोई अंग

रखा गया हो, उसको वैसा ही पड़ा रहने देता है, स्वयं अपने अंग को हिलाता डुलाता नहीं है। इस प्रकार अरहंतदेव प्रायोपगमन को स्व और परकृत प्रतिकार से रहित कहते हैं। निश्चय से प्रायोपगमन अचल होता है। किन्तु उपसर्ग अवस्था में मनुष्यादि के द्वारा चलायमान किये जाने पर चल भी होता है अर्थात् स्वयं शरीर को न हिलाने से अचल ही है किन्तु दूसरे के द्वारा हिलाने पर चला होता है।

उपसर्ग अवस्था में एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान में डाल दिये जाने पर यदि वह वहीं मरण करता है तो उसे नीहार कहते हैं, ऐसा नहीं होने पर पूर्व स्थान में ही मरण हो तो अनीहार कहाता है। जिनकी आयु का काल अल्पशेष रहता है वे प्रतिमा योग धारण करके प्रायोपगमन करते हैं और कुछ दीर्घकाल तक विहार करते हुए इंगिनीमरण करते हैं।

आशाधर जी ने इसका अर्थ इस प्रकार किया- कुछ तो सल्लेखना न करके ही कायोत्सर्ग पूर्वक प्रायोपगमन करते हैं और कोई चिरकाल तक उपवास करके प्रायोपगमन करते हैं। इसी प्रकार इंगिणी भी जानना। अर्थात् उन्होंने दोनों मरणों के दो-दो प्रकार कहे हैं। ऊपर के अर्थ के अनुसार अल्प आयु वाले प्रायोपगमन करते हैं इसी से वे अपने शरीर की सेवा न स्वयं करते हैं न दूसरे से करते हैं। दीर्घ आयु शेष रहने वाले इंगिनीमरण करते हैं अतः वे अपने शरीर की सेवा स्वयं तो करते हैं दूसरे से नहीं करते उन्हे स्वयं मलमूत्र का त्याग तो करना होता ही है।

महान् उपसर्ग अथवा भयानक दुर्भिक्ष होने पर परीषहों को सहन करने में समर्थ मुनि अल्प भी मरण के कारण उपस्थित होने पर उत्साह पूर्वक मृत्यु का आलिंगन करते हैं।

(भ.आ. गा.2056-2066)



## प्रकरण-5

### अन्तरंग सल्लेखना

एवं सरीर सल्लेहणाहिं बहुविहा व फासेंतो ।

अज्ञवसाणविसुद्धि खणमविखवओण मुचेज ॥258 भ. आ. पृ.260

उक्त क्रम से नाना प्रकार की शरीर सल्लेखना की विधि को करते हुए भी परिणामों की विशुद्धि को क्षपक एक क्षण के लिए भी न छोड़े ।

**आव विशुद्धि उत्कृष्ट तप से श्री श्रेष्ठ**

अज्ञवसाणविसुद्धीए वजिदा जे तवं विगट्ठंपि ।

कुब्वंति बहिल्लेस्मा ण होइ सा केवल सुद्धी ॥259

परिणामों की विशुद्धि को छोड़कर जो उत्कृष्ट भी तप करते हैं उनकी चित्तवृत्ति पूजा सत्कार आदि में ही लगी होती है। उनके अशुभ कर्म के आसाव से रहित शुद्धि नहीं होती। अर्थात् दोषों से मिली हुई शुद्धि होती है।

अविगट्ठ पि तवं जो करेइ सुविसुद्धसुक्लेस्माओ ।

अज्ञवसाणविसुद्धो सो पावदि केवलं सुद्धि ॥260

जो अतिविशुद्ध शुक्ललेश्या से युक्त और विशुद्ध परिणाम वाला अनुत्कृष्ट भी तप करता है वह केवल शुद्धि को पाता है। यह गाथा का अर्थ है।

अज्ञवसाणविसुद्धि कसायकलुसीकदस्स णन्थ्यति ।

अज्ञवसाणविसुद्धि कसायसल्लेहणा भणिदा ॥261

जिसका चित्त कषाय से दूषित है उसके परिणाम विशुद्ध नहीं होती। इसलिये परिणाम विशुद्ध को कषाय सल्लेखना कहा है।

**विशेषार्थ :-** जिस मुनि का चित्त क्रोधाग्नि के द्वारा कलुषित है उस मुनि के परिणाम विशुद्ध नहीं हैं। अतः उसके कषाय सल्लेखना नहीं है। कषाय के कृश करने को कषाय सल्लेखना कहते हैं। और कषाय के कृश हुए बिना परिणाम विशुद्ध नहीं होते। अतः परिणाम विशुद्धि के साथ कषाय सल्लेखना का साध्य साधन भाव सम्बन्ध है।

कोधं खमाए माणं च मद्वेणाज्जवेण मायं च ।

संतोसेण य लोहं जिणह खु चत्तारि वि कषाय ॥262

जो शुभ परिणामों के प्रवाह में बहता है वही चार कषायों की सल्लेखना करता है यह कहकर, सामान्य से चारों कषायों को कृश करने का उपाय उनके प्रतिपक्षी चार प्रकार के परिणाम हैं, यह कहते हैं-

क्रोध को क्षमा से, मान को मार्दव से, माया को आर्जव से और लोभ को सन्तोष से, इस प्रकार चारों कषायों को जीतो।

कोहस्स य माणस्स य मायालोभाण सो ण एदि वसं ।  
जो ताण कसायाणं उत्पत्ति चेव वज्जेइ ॥२६३  
उन कषायों की उत्पत्ति को ही रोक देता है वह क्रोध, मान, माया, लोभ के वश में नहीं होता ।

तं वथुं मोत्तव्वं जं पडि उप्पज्जदे कसायग्नि ।  
तं वथुमल्लिएजो जत्थोवसमो कसायाणं ॥२६४  
उस वस्तु को छोड़ देना चाहिए जिसको लेकर कषाय रूपी आग उत्पन्न होती है । और उस वस्तु को अपनाना चाहिए जिसके अपनाने से कषायों का उपशमन हो ।

जइ कहवि कसायग्नी समुट्ठिदो होजा विज्ञवेदव्वो ।  
रागदोसुपत्ति विज्ञादि हु परिहंतस्स ॥२६५  
यदि थोड़ी भी कषाय रूपी आग उठती हो तो उसे बुझा दे । जो कषाय को दूर करता है उसके राग-द्वेष की उत्पत्ति शान्त हो जाती है । नीच जन की संगति की तरह कषाय हृदय को जलाती है । अशुभ आंगोपांग नामकर्म के उदय से जो मुख विरूप होता है जैसे धूल पड़ने से आँख लाल हो जाती है वैसे ही क्रोध से मनुष्य काँपने लगता है । जैसे शराबी शराब पीकर जो चाहे बकता है वैसे ही क्रोध में मनुष्य जो चाहे बोल देता है । जैसे जिस पर भूत का प्रकोप होता है वह कुछ भी करता है वैसे ही क्रोधी मनुष्य जो चाहे करता है । कषाय समीचीन ज्ञानरूपी दृष्टि को मलिन कर देती है । सम्यादर्शन रूपी वन को उजाड़ देती है । चारित्ररूपी सरोवर को सुखा देती है । तपरूपी पत्रों को जला देती है । अशुभकर्म रूपी बेल की जड़ जमा देती है । शुभकर्म फल को रसहीन कर देती है । अच्छे मन को मलिन करती है । हृदय को कठोर बनाती है । प्राणियों का घात करती है । वाणी को असत्य की ओर ले जाती है । महान् गुणों का भी निरादर करती है । यशरूपी धन को नष्ट करती है । दूसरों को दोष लगाती है । महापुरुषों के भी गुणों को ढाँकती है, मित्रता की जड़ खोदती है । किये हुए भी उपकार को भूलाती है । महान् नरक के गढ़ में गिराती है । दुःखों के भँवर में फँसाती है । इस प्रकार कषाय अनर्थ करती है । ऐसी भावना से कषाय को शान्त करना चाहिए ।

जावंति केड़ संगा उदीरया होंति रागदोसाणं ।  
ते वज्जंतो जिणदि हु रागं दोसं च णिस्संगो ॥२६६  
जितने भी परियह रागद्वेष को उत्पन्न करते हैं, उन परियहों को छोड़ने वाला अपरियही साधु राग और द्वेष को निश्चय से जीतता है ।

पडियोदणासहणासहणवायखुभिदयडिवयणइङ्णाइद्वो ।  
चंडो हु कसायग्नी सहसा संयज्जलेज्जहि ॥२६७

इस प्रकार कषाय रूपी अग्नि का उदय होता है और वह इस प्रकार अपकार करती है, तथा इस प्रकार से उसे शान्त करना चाहिए, यह तीन गाथाओं से कहते हैं- शिष्य की अयोग्य प्रवृत्ति को रोकने के लिए गुरु के द्वारा शिक्षा दिये जाने पर शिष्य ने जो प्रतिकूल वचन कहे वह गुरु को सहन नहीं हुए । बही हुई वायु । उस वायु से गुरु के मन में आग भड़क उठी । उसके पश्चात् गुरु ने शिष्य को पुनः समझाया तो शिष्य ने पुनः प्रतिकूल वचन कहे । उसने गुरु की क्रोधाग्नि में ईधन का काम किया तो आग भड़क उठी । अथवा गुरु ने शिष्य को शिक्षा दी । शिष्य उससे कुछ हुआ । शिष्य की क्रोध रूपी वायु से क्षुब्ध होकर गुरु ने पुनः उसे शिक्षा दी । उस शिक्षाने शिष्य की क्रोधाग्नि को भड़काने में ईधन का काम किया । ऐसे भयानक कषायाग्नि सहसा भड़कती है ।

जलिदो हु कसायग्नी चरित्तसारं डहेजा कसिणं पि ।  
सम्पत्तं पि विराधिय अणंतसंसारियं कुजा ॥२६८  
जलती हुई कषाय रूप आग समस्त चारित्र नामक सार को जला देती है । सम्यकत्व को भी नष्ट करके अनन्त संसार के परिभ्रमण में लगा देती है ।

तम्हा हु कसायग्नी पावं उप्पज्जमाणयं चेव ।  
इच्छामिच्छादुक्कडवंदणसलिलेण विज्ञाहि ॥२६९  
इसलिए पाप रूप कषायग्नि को उत्पन्न होते ही बुझा देना चाहिए । उसको बुझाने का जल है- मैं भगवान् जिनेन्द्रदेव की शिक्षा की इच्छा करता हूँ । मेरा खोटा कर्म मिथ्या हो, मैं नमस्कार करता हूँ ।

जह चेव पोकसाया सल्लिहियव्वा परेणुवसमेण ।  
सण्णाओ गारवाणि य तह लेस्साओ य असुहाओ ॥२७०  
इसी तरह उत्कृष्ट उपशमभाव के द्वारा नोकषाय, संज्ञा, गौरव और अशुभ लेश्याओं को घटाना चाहिए । हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद इन्हें नोकषाय कहते हैं । आहार, भय, मैथुन और परियह की चाह का नाम संज्ञा है । ऋद्धि की तीव्र अभिलाषा, रस और सुख की चाह को गारव कहते हैं ।

परिवडिदोवधाणो विगडसिराणहारुपासुलिकडाहो ।  
सल्लिहिदतणुसरीरो अजङ्गप्परदो हवदि णिच्चं ॥२७१  
जो प्रतिदिन अपने नियमों को बढ़ाता है, जिनकी बड़ी और छोटी सिरायें, दोनों ओर की हड्डियाँ और नेत्रों की हड्डियाँ स्पष्ट दिखाई देती हैं - शरीर को सम्यक् रूप से कृश करने वाला वह यति नित्य आत्मा में लीन रहता है ।

एवं कदयपरियम्मो सब्भंतरबाहिरम्मि सल्लिहणे ।  
संसार मोक्षबुद्धी सब्लुवरिल्लं तवं कुणदि ॥२७२

उक्त क्रम के अनुसार अभ्यास करने वाले अभ्यन्तर सल्लेखना सहित बाह्य सल्लेखना करने पर संसार के त्याग का दृढ़ निश्चय करके सब तपों से उत्कृष्ट तप करता है।

### क्षमा याचना-

खामेदि तुम्ह खवओत्ति कुंचओ तस्स चेव खवगस्स। दावेदव्वो णेदूण सव्वसंघस्स वसधीसु ॥704

यह क्षपक आप सबसे क्षमा माँगता है। इसके प्रमाण के लिए आचार्य उस क्षपक की पिछ्छीका लेकर सर्वसंघ की वसतिका में दिखलाते हैं। अर्थात् क्षपक सबके पास क्षमा माँगने स्वयं नहीं जा सकता, इसलिए उसकी पिछ्छी सर्वत्र ले जाकर दिखलाते हैं कि वह आप सबसे क्षमा माँगता है।

आराधणपत्तीयं खवयस्स व णिरुवसग्गपत्तीयं। काओसग्गो संघेण होइ सव्वेण कादव्वो ॥ 705

क्षपक के रत्नत्रय की आराधना पूर्ण हो और उसमें कोई विघ्न न आवे, इसके लिए सर्व संघ को कायोत्सर्ग करना चाहिए।



### प्रकरण-6

#### समाधि के लिए योग्य वसतिका

उगमउप्पादणएसणा विसुद्धाए अकिरियाए हु।

वसइ असंसन्नाए णिप्पाहुडियाए सेज्जाए ॥635

जो वसति उद्गम उत्पादन और एषणा दोष से रहित होती है, अपने उद्देश्य से जिसमें लिपाई-पुताई अद्वितीय नहीं आने वाले प्राणी आकर वास नहीं करते तथा जो संस्कार रहित वसति में साधु निवास करते हैं। कराई गई है जिसमें उसी वसतिका में रहने वाले तथा बाहर से रहित, जंतुरहित, क्षपक के शरीर प्रमाण हो, गीलि न हो, मजबूत और गुप्त हो प्रकाश सहित वही भूमि संस्तर योग्य है।

सुहणिक्खवणपवेसणधणाओ अवियड अणंधयाराओ।

दो तिणिं वि वसधीओ घेत्तव्वाओ विसालावो ॥636

जिसमें बिना कष्ट के सुख पूर्वक प्रवेश और निर्गमन होता हो, जिसका द्वार खुला न हो तथा जिसमें अंधकार न हो; ऐसी 2 अथवा 3 विशाल वसतिका ग्रहण करनी चाहिए। जघन्य से दो वसतिका लेना चाहिए। एक में क्षपक रहता है। दूसरी में अन्य यति और धर्म सुनने के लिये आये बाहर के आदमी रहते हैं (यदि तीन ग्रहण करते हैं तो एक क्षपक, एक में अन्य यति और एक में धर्मोपदेश होता है) यदि वसतिका द्वार खुला हो तो शीतवायु आदि के प्रवेश से हाड़चाम मात्र शेष रहे क्षपक को दुःसह दुःख होता है। खुले स्थान में वह मलमूत्र का त्याग भी कैसे करेगा? अंधेरी वसतिका में असंयम होगा। जीवजंतु दृष्टिगोचर नहीं होंगे। सुखपूर्वक आना जाना संभव न होने से अपनी भी विराधना होती है और संयम की भी विराधना होती है।

घणकुडे सकवाडे गामबहिं बालवुद्रुणजोग्मे।

उज्जाणधरे गिरिकंदरे गुहाए व सुण्णहरे ॥637

जिसकी दीवार मजबूत हो, कपाट सहित हो, गाँव के बाहर ऐसे प्रदेश में हो जहाँ बच्चे बूढ़े और चार प्रकार का संघ जा सकता हो, ऐसी वसति में, उद्यानधर में, गुफा में अथवा शून्य धर में क्षपक का संथारा होता है।

आगंतु घरादीसु वि कडहिं य चिलिमिलीहिं कायव्वो।

खवयस्सोच्छाहागारो धम्मसवणमंडवादी य ॥638

सेना के पडाव के साथ आये हुए व्यापारियों के द्वारा बनाये गये घरों में और आदि शब्द से इस प्रकार के श्रमणों के योग्य उद्यानगृह आदि में क्षपक का संथारा करना चाहिए। उक्त प्रकार की वसतियों के न मिलने पर क्षपक के रहने के लिए बाँस के पत्तों

से आच्छादित और प्रकाश के लिए झीरी सहित घर बना देना चाहिए। तथा धर्म के सुनने के लिए मण्डप आदि भी बना देना चाहिए। इससे बहुत असंयम में निमित्त वसतिका त्याग और संयम में साधन वसतिका निर्माण कहा-

**पुढ़वी सिलामओ वा फलयमओ तणमओ य संथारो ।**

**होदि समाधिणिमित्तं उत्तर सिर अह व पुब्वसिरो ॥1639**

इस प्रकार की वसति में इस प्रकार का संस्तर होना चाहिए, यह कहते हैं- समाधि के निमित्त संथारा पृथिवीय, या शिलामय या फलकमय-लकड़ी का अथवा तृणों का होता है उसका सिर उत्तर की ओर अथवा पूरब की ओर होना चाहिए क्योंकि लोक में मांगलिक कार्यों में पुरब दिशा अच्छी मानी जाती है उसी प्रकार में सूर्य का उदय होता है। अथवा उत्तर दिशा में विदेह क्षेत्र में स्थित तीर्थकरों के प्रति भक्ति प्रदर्शित करने के उद्देश्य से उत्तर दिशा भी शुभ मानी जाती है।

**अघसे समे असुसिरे अहिसुयअविले य अप्पपाणे य ।**

**असिणिद्धे घगगुते उज्जोवे भूमिसंथारो ॥1640**

जो भूमि कठोर हो, ऊँची-नीची न हो, सम हो, छिद्र रहित हो, चीटी आदि से रहित हो। जन्तु रहित, क्षपक के शरीर प्रमाण हो, गीलि न हो, मजबुत और गुप्त हो प्रकाश सहित वही भूमि संस्तर योग्य है।

**विद्वन्थो य अफुडिदो णिक्रंपां सव्वदो अससत्तो ।**

**समपट्टो उज्जोवे सिलामओ होदि संथारो ॥1641**

शिलामय संस्तर आग से, कूटने से अथवा घिसने से, प्रासुक हुआ हो, टूटा-फूटा न हो, निश्चल हो, सब ओर से जीव रहित हो, अर्थात् पत्थर में रहने वाले खटमल आदि से रहित हो, समतल हो, ऊँचा नीचा न हो, प्रकाशयुक्त हो, ऐसा शिलामय संस्तर होता है।

**भूमिसमरुदलहओ अकुक्कुचोकंग अप्पमाणो य ।**

**अच्छिद्दो य अफुडिदो लण्हो वि य फलयसंथारो ॥1642**

फलकसंस्तर सब ओर से भूति से लगा हो, विस्तीर्ण हो, हलका हो, उठाने लाने जाने में सुकर हो अचत हो-शब्द न करता हो, एकरूप हो, जंतुरहित हो, छिद्र रहित हो, टूटा-फूटा न हो, चिकना हो, ऐसा फलक संस्तर होता है।

**णिस्संधी य अपोल्लो णिरुवहदो समधिवास्सणिजंतु ।**

**सुहपडिलेहो मउओ तणसंथारो हवे चरिमो ॥1643**

तृणसंस्तर गाँठ रहित, तृणों से बना हो, तृणों के मध्य में छिद्र न हो, टूटे तृण न लगे हो, मृदुस्पर्शनवाला हो जंतु रहित हो, सुखपूर्वक शुद्धि करने के योग्य हो, और

कोमल हो ऐसा अंतिम तृणसंस्तर होता है।

**जुत्तो पमाणरडओ उभयकालपडिलेहणासुद्धो ।**

**विधिविहिदो संथारो आरोहव्वो तिगुत्तेण ॥1644**

इस प्रकार संस्तर योग्य हो, प्रमाण युक्त हो- न बहुत छोटा हो और न बहुत बड़ा हो, दोनों समय अर्थात् सूर्योदय और सूर्यस्ति के समय प्रतिलेखना द्वारा शुद्ध किया गया हो, और शास्त्र में निर्दिष्ट क्रम के अनुसार बनाया गया हो। ऐसे संस्तर पर अशुभ मन-वचन-काय का निरोध करके क्षपक को आरोहण करना चाहिए।

**णिसिद्धिं अप्पाणं सव्वगुणसमणिदंमि णिजवए ।**

**संथारम्मि णिसण्णो विहरदि सल्लेहणाविधिणा ॥1645**

सर्वगुणों से सम्पन्न निर्यापिकाचार्य पर अपने को समर्पित करके क्षपक संस्तर पर आरोहण करता है और सल्लेखना की विधि से विचरता है। सल्लेखना के दो प्रकार हैं- बाह्य और अभ्यन्तर। अथवा द्रव्य सल्लेखना और भाव सल्लेखना। आहार को त्यागकर शरीर की सल्लेखना करता है और सम्यादर्शनादि भावों से मिथ्यात्वादि परिणाम को कृश करता है।



## प्रकरण-७

**निर्यापकाचार्य-द्वारा क्षपक की श्रेवा**

पियधम्मा दठधम्मा संविगगा वज्जभीरुणोधीरो ।

छंदण्हू पच्छइया पच्चक्खाणम्मि य विदण्हू ॥646

जिन्हें धर्म प्रिय है, जो धर्म में स्थिर है, संसार से भीरु हैं, पाप से डरते हैं, धैर्यवान हैं, अभिप्राय को जानते हैं, विश्वास के योग्य है प्रत्याख्यान के क्रम को जानते हैं ऐसे यति निर्यापक होते हैं।

कप्पाकप्पे कुसला समाधिकरणुज्जुदा सुदरहस्सा ।

गीदत्था भयबंतो अडदालीस तु णिज्जवया ॥647

जो यह योग्य है और यह अयोग्य है इस प्रकार भोजन और पान की परीक्षा में कुशल होते हैं, क्षपक के चित्त का समाधान करने में तत्पर रहते हैं, जिन्होंने प्रायश्चित्त ग्रन्थों को सुना है, जो सूत्र के अर्थ को हृदय से स्वीकार लिये हैं, अपने ओर दूसरों के उद्धार करने के माहात्म्य से शोभित हैं ऐसे अडदालीस निर्यापक यति होते हैं।

आमासणपरिमासणचंकमणसयण-णिसीदणे ठाणे ।

उव्वत्तणपरियत्तणपसारणा-उंटणादीसु ॥648

क्षपक के शरीर के एक देश के स्पर्शन करने को आमर्शन कहते हैं। और समस्त शरीर का हस्त से स्पर्शन करने को परिमर्शन कहते हैं। इधर-उधर जाने को चंक्रमण कहते हैं। अर्थात् परिचारक मुनि क्षपक के शरीर को अपने हाथ से सहलाते हैं, दबाते हैं चलने-फिरने में सहायता करते हैं। सोने, बैठने, उठने में सहायता करते हैं। उद्वर्तन अर्थात् एक करवट से दूसरी करवट लिटाते हैं। हाथ-पैर फैलाने में संकोच ने में सहायता करते हैं।

संजदकमेण खवयस्स देहकिरियासु णिच्चमाउत्ता ।

चदुरो समाधिकामा ओलगंता पडिचरति ॥649

चार परिचारक यति मुनिमार्ग के अनुसार क्षपक की ऊपर कही शारीरिक क्रियाओं में प्रतिदिन लगे रहते हैं। वे क्षपक की समाधि को करते हुए उपासना पूर्वक परिचर्या करते हैं।

भत्तित्थिरायजणवदकंदप्तथणटियकहाओ ।

वजित्ता विकहाओ अजङ्गप्पविराथणकरीओ ॥650

जो भोगा या सेवन किया जाता है वह भक्त है अर्थात् चार प्रकार का आहार की कथा, स्त्री की कथा, राजा की कथा, देशों की कथा। राग के उद्रेक से हँसी से मिश्रित अशिष्ट वचन बोलने कर्न्दप है। उसकी कथा, नोटंकी और नाचनेवालियों की

कथा विकथा हैं। ये अध्यात्म की विराधना करती हैं। जो आत्म से सम्बद्ध हो उसे आध्यात्मिक कहते हैं आत्मतत्त्व के यथार्थ कथन को अध्यात्म कहते हैं। ये कथाएँ उसका विघात करती हैं।

अखलिदमभिडिमण्वाइडमणुच्चमविलंबिदममंदं ।

कंतममिच्छामेलिदमण्टथर्हीणं अपुणरूत्तं ॥651

वे मुनि अस्खलित धर्म कथा कहते हैं। कुछ का कुछ शब्द बोलना शब्दस्खलन है। विपरीत अर्थ करना अर्थ स्खलन है। इस स्खलन से रहित कथा कहते हैं। एक बात को दुहराते नहीं। सन्देह में डालने वाला कथन नहीं करते। प्रत्यक्ष आदि से विरुद्ध कथन करते हैं। बहुत जोर से नहीं बोलते। न बहुत रुक-रुककर बोलते हैं। बहुत मन्द अवाज से भी नहीं बोलते। कानों को प्रिय वचन बोलते हैं बहुत मन्द अवाज से भी नहीं बोलते। कानों को प्रिय वचन बोलते हैं। मिथ्यात्व की बात नहीं करते। ऐसी बात नहीं कहते जिसका कुछ अर्थ ही न हो। जो बात हो उसे ही पुनः कहना पुनरुक्त है। वे पुनरुक्त कथन करते हैं।

णिद्वं मधुरं हिदयंगमं च पल्हदणिजपत्थं च ।

चत्तारि जणा धम्मं कहति णिच्चं विचित्तकहा ॥652

नाना कथाओं में कुशल वे चार परिचारक यति प्रिय, मधुर अर्थात् ललितपद और वर्णवाली, श्रोता के हृदय में प्रवेश करने वाली सुखदायक हितकारी कथा निरन्तर कहते हैं।

चत्तारि जणा भक्तं उव कप्पेति अगिलाए पाओगं ।

द्विद्यमवगददोसं अमोइणो लद्विसंपण्णा ॥661

चार परिचारक यति उस क्षपक के लिए उसको इष्ट खान-पान बिना ग्लानि के लाते हैं। उन्हें ऐसा संकल्प नहीं होता कि कब तक हम इसके लिए लावें। तथा खान-पान उद्गाम आदि दोषों से रहित होता है। और वात पित्त कफ को उत्पन्न करने वाला नहीं होता। क्षपक भी लिप्सावश आहार पसंद नहीं करता। किन्तु भूख और प्यास परीषह को शांत करने में समर्थ खान-पान की इच्छा करता है। जो यति आहार लाते हैं वे मायावी नहीं होते अयोग्य आहार को योग्य नहीं करते। मायावी अयोग्य को योग्य कह सकता है। तथा वे मोह और अन्तरायकर्मों का क्षयोपशम होने से भिक्षा लब्धि से युक्त होते हैं, उन्हें भिक्षा अवश्य मिल जाती है अलब्धिमान मुनि भिक्षा न मिलने पर खाली हाथ लौटकर क्षपक को कष्ट पहुँचाता है।

चत्तारि जणा पाणय मुवकप्पंति अगिलाए पाओगं ।

द्विद्यमवगददोसं अमोइणो लद्विसंपण्णा ॥662

चार परिचारक मुनि क्षपक के लिए बिना ग्लानी के उद्भम आदि दोषों से रहित, वात, पित्त, कप को पैदा न करने वाला तथा क्षपक की प्यास परिष्हट को शान्त करने वाला पानक लाते हैं। वे लाने वाले यति मायारहित और भिक्षालब्धि से संपन्न होते हैं। आचार्य की अनुज्ञा से स्वयं अपने को उपस्थित करने वाले दो-दो परिचारक भोजन और पान अलग-अलग लाते हैं।

चत्तारि जणा रक्खन्ति दवियमुवकप्पियं तयं तेहिं ।

अग्निलाएऽ अप्पमत्ता खवयस्स समाधिमिच्छंति ॥663

चार यति उन यतियों के द्वारा लाये गये खानपान की बिना किसी प्रकार की ग्लानी से रहित होकर रक्षा करते हैं कि उसमें त्रसादि न गिरे अथवा कोई उसमें त्रसादि जंतु न गिरा दे। वे सब क्षपक की समाधि के इच्छुक होते हैं कि उसकी समाधि निर्विघ्न पूर्ण हो।

काइयमादी सवं चत्तारिपदि द्वावन्ति खवयस्स ।

पडिलेहंति य उवधोकाले सेज्जुवधिसंथारं ॥664

चार मुनि क्षपक के सब मलमूत्र उठाने का कार्य करते हैं। और सूर्य के उदय तथा अस्त होने के समय वसति, उपकर और संथरे की प्रतिलेखना करते हैं।

खवगस्स घरदुवारं सारक्खंति जदणाएऽ दु चत्तारि ।

चत्तारि समोसरण दुवारं रक्खंति जदणाए ॥665

चार यति सावधानता पूर्वक क्षपक के घर के द्वार की रक्षा करते हैं। ऐसा वे असंयमी जनों और शिक्षकों को अन्दर प्रवेश करने से रोकने के लिए करते हैं। चार मुनि सावधानता-पूर्वक समवसरण द्वारा अर्थात् धर्मोपदेश करने के घर के द्वार की रक्षा करते हैं।

जिदणिदा तछिच्छा रादो जग्गंति तह य चत्तारि ।

चत्तारि गवेसति खु खेते देसप्पवत्तीओ ॥666

निन्द्रा को जीत लेने वाले और निन्द्रा को जीतने के इच्छुक चार यति रात में क्षपक के पास जगते हैं। और चार मुनि अपने रहने के क्षेत्र में देश की अच्छी प्रवृत्तियों की परीक्षा करते हैं अर्थात् जिस क्षेत्र में क्षपक समाधि मरण करता है उस देश के अच्छे बुरे समाचारों की खबर रखकर उनकी परीक्षा करते हैं कि समाधि में कोई बाधा आने का तो खतरा नहीं है।

वार्हिं असद्वडियं कहंति चउरो चदुविधि कहाओ ।

ससमयपरसमयविदू परिसाएऽ समोसदाए ॥667

क्षपक के आवास के बाहर स्वसिद्धान्त और पर सिद्धान्त के ज्ञाता चार यति

क्रम से एक-एक करके सभा में धर्म सुनने के लिए आये हुए श्रोताओं को पूर्ववर्णित चार कथाएँ इस प्रकार कहते हैं कि दूरवर्ती मनुष्य उनका शब्द न सुन सके। अर्थात् क्षपक को सुनाई न दे इतने धीरे से बोलते हैं। उससे क्षपक को किसी प्रकार की बाधा नहीं होती।

वादि चत्तारि जणा सीहाणुग तह अणेयसत्थविद् ।

धर्मकहयाण रक्खाहेदुं विहरंति परिसाए ॥668

अनेक शास्त्रों के ज्ञाता और बाद करने में कुशल चार मुनि धर्मकथा करने वालों की रक्षा के लिए सभा में सिंह के समान विचरते हैं। अर्थात् धर्मकथा में कोई विवाद खड़ा कर दे तो वाद करने में कुशल मुनि उसका उत्तर देने के लिए तत्पर रहते हैं।

एवं महाणुभावा पग्गाहिदाएऽ समाधिजदणाए

तं णिज्जवंति खवयं अडयालीसं हि णिजवया ॥669

इस प्रकार महात्म्यशाली ४८ निर्यापक यति क्षपक की समाधि में उत्कृष्ट प्रयत्नशील रहते हुए उस क्षपक को संसार समुद्र से निकलने के लिए प्रेरित करते हैं।

जो जारिसओ कालो भरदेवदेसु होई वासेसु ।

ते तारिसया तदिया चौद्धालीसं पि णिजवया ॥670

पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्रों में जब जैसा काल हो तब उसी काल के अनुकूल गुणवाले 44 निर्यापक स्थापित करना चाहिए।

एवं चदुरो चदुरो परिहावेदव्वगा य जदणाए ।

कालिम संकिलिद्धिं जाव चत्तारि साधेंति ॥671

णिजावया य दोणिं वि होंति जहणेण काल संसयणा ।

एक्को णिजावयओ ण होई कइया वि जिणसुत्तो ॥672

इस प्रकार ज्यों- ज्यों काल खराब होते जाये त्यो-त्यो देशकाल के अनुसार सावधानता पूर्वक 44 निर्यापक कम करते जाना चाहिए। अंत में 4 निर्यापक भी समाधिमरण को संपन्न करते हैं। अधिक काल खराब होने पर कम से कम-2 निर्यापक भी होते हैं। किन्तु जिनागम में किसी भी अवस्था में एक निर्यापक नहीं कहा।



## प्रकरण-८

### क्षपक का सारण (पेय)

अकहुगमतित्तयमण्विलंच अकसायमलवणममधुरं।

अविरस मदुभिगंधं अच्छमणुहं अणदिसीदं ॥ (पृ. 694)

क्षपक को दिया जाने वाला पानक कटुक, चरपरा, खड्डा, कसैला, नमकबाला, मीठा, स्वादयुक्त और दुर्गन्ध युक्त नहीं होना चाहिये अर्थात् वह न कटुक हो, न चरपरा हो, न खड्डा हो, न कसैला हो, न नमक से युक्त हो, न मीठा हो, तथा स्वादहीन और दुर्गन्धयुक्त भी न हो। स्वच्छ हो, न गर्म हो और न ठंडा हो।

पाणगमसिभलं परिपूर्यं खीणस्स तस्स दादव्वं।

जह वा पच्छं खवयस्स तस्स तह होइ दायव्वं ॥ 1486 भ. आ.

कफ पैदा करने वाला न हो, कपड़े से छान लिया गया हो, इस प्रकार कमजोर क्षपक को ऐसा पेय देना चाहिये जो उसके लिये पथ्य हो, अर्थात् समाधि में विघ्न डालने वाला न हो।

संथारत्थो खबओ जड़या खीणो हवेज तो तड़या।

वोसरिदब्बो पुव्वविधिणे व सोपाणगाहरो ॥ 1487

जब संस्तरारूढ़ क्षपक अतिक्षीण हो जाये तब पूर्व विधि से पानक का त्याग करा देना चाहिये।

### क्षपक की विकित्सा: शारीरिक एवं आद्यात्मिक

एवं संथारगदस्स कम्मोदण्ण खवयस्स।

अंगे कथ्थइ उद्भिज वेयणा ज्ञाणविग्वयरी ॥ 1488

इस प्रकार संस्तरारूढ़ क्षपक के कर्म के उदय से किसी अंग में ध्यान में विघ्न डालने वाली वेदना यदि उत्पन्न हो जाये।

बहुगुणसहस्रभरिया जदि णावा जम्मसायरे भीमे।

भिजदि हु रयणभरियाणावा व समुद्रमज्जम्मि ॥ 1489

समुद्र के मध्य में रत्नों से भरी नाव की तरह हजारों गुणों से भरी यति रुपी नौका यदि भयंकर संसार सागर में झूबने लगे।

गुणभरिदं जदिणावं दट्टूण भवोदधिम्मि भिजंतं।

कुणमाणो हु उवक्कख को अण्णो हुज णिढ्म्मो ॥ 1490

गुणों से भरी नाव को संसार-समुद्र में झूबते हुए देखकर यदि कोई उपेक्षा करता है तो उससे बड़ा अधार्मिक दूसरा कौन होगा।

विजावच्चस्स गुणा जे पुव्वं वित्थरेण अकखादा।

तेसि फिडिओ सो होइ जो उविक्षिज्ज तं खवयं ॥ 1491

जो क्षपक की उपेक्षा करता है वह पूर्व में जो वैयावृत्य के गुण विस्तार से कहै हैं उनसे च्युत होता है।

तो तस्य तिगिंछाजाणएण खवयस्य सव्वसतीए।

विजादेसेद व से पडिकम्म होइ कायव्वं ॥ 1492

अतः उस क्षपक के रोग की चिकित्सा जानने वाले निर्यापिकाचार्य को स्वयं अथवा वैद्य के परामर्श से सर्व शक्ति के साथ इलाज करना चाहिए।

णाऊण विकारं वेदणाए तिस्से करेज पडियारं।

फासुगदव्वेहिं करेज वायकफित्तपडिघादं ॥ 1493

उस क्षपक की वेदना के विकार को जानकर प्रासुक द्रव्यों से वात, पित्त और कफ को रोकने वाला प्रतिकार करना चाहिए।

बच्छीहिं अवद्वणतावणेहिं आलेवसीदकिरियाहिं।

अबभंगणपरिमद्दण आदीहिं तिगिंछदे खवयं ॥ 1494

वस्तिकर्म (एनिमा) गर्म लोहे से दागना, पसीना लाना, लेप लगाना, प्रासुक जल का सेवन कराना, मालिस, अंगमर्दन आदि के द्वारा क्षपक की वेदना दूर करना चाहिए।

एवं पि कीरमाणो परियम्मे वेदणा उवसमो सो।

खवयस्य पावकम्मोदण्ण तिब्बेण हुण होज ॥ 1495

इस प्रकार प्रतीकार करने पर तीव्र पाप कर्म के उदय से यदि क्षपक की वेदना शान्त न हो। क्योंकि केवल 'बाह्य' द्रव्य के प्रभाव से ही कर्म अपना फल न दें, ऐसी वात नहीं है। वही बाह्य द्रव्य एक की वेदना शान्त करता है दूसरे की नहीं करता। यह तो अनुभव सिद्ध है।

अहवा तण्हादिपरीसहेहिं खबओ हविज अभिभूदो।

उवसग्गेहिं व खबओ अचेदणो होज अभिभूदो ॥ 1496

अथवा क्षपक प्यास आदि की वेदना से अभिभूत हो जाय या उपसर्गों से पीडित होकर मूर्छित हो जाये।

तो वेदणावसटो वाउलिदो वा परीसहादीहिं।

खबओ अणप्पवसिओ सो विप्पलवेज जं किं पि ॥ 1497

या वेदना से पीडित और परीषह उपसर्गों से व्याकुल होकर क्षपक अपने वश में न रहे और जो कुछ भी बकने लगे।

उब्भासेज व गुणसेढीदो उदरणबुद्धिओ खवओ ।  
छटुं दोच्चं पढमं व सिया कुटिलिदपदमिछंतो ॥1498

अयोग्य वचन कहे, या संयमगुण की सीढ़ी से नीचे उतरना चाहे, या निचले स्थान को चाहते हुए रात्रि भोजन या रात्रि में पानक लेना चाहे या दिन में असमय में भोजन करना चाहे ।

तह मुजङ्गांतो खवगो सारेदब्बो य से तओ गणिणा ।  
जह से विसुद्धलेस्सो पच्चागदचेणो होज ॥1499

इस प्रकार जब क्षपक मोह में पड़ जाये तो आचार्य को उसे सब पिछली बातों का स्मरण कराना चाहिये । जिससे उसके परिणाम विशुद्ध हो और उसका यथार्थ ज्ञान लौट आवे ।

कोसि तुमं किं णामो कथ वससि को व संपही कालो ।  
किं कुणसि तुमं कह वा अत्थसि किं णामगो वाहं ॥1500

तुम कौन हो? तुम्हारा क्या नाम है? कहाँ रहते हो? इस समय दिन है या रात है? तुम क्या करते हो? कहाँ बैठे हो? मेरा क्या नाम है ।

एवं आउच्छिता परिक्खहेदुं गणी तयं खवयं ।  
सारङ् वच्छलयाए तस्य य कवयं करिस्संति ॥1501

इस प्रकार आचार्य उसकी परीक्षा के लिए कि यह सचेत अवस्था में है या अचेत अवस्था में है, वात्सल्य भाव से बार-बार उसे स्मरण कराते हैं । उनकी यह भावना रहती है कि यदि यह सचेत है तो उसके संयम की रक्षा की जाये ।

जो पुण एवं ण करिज साराणं तस्य वियलचक्खुस्स ।  
सो तेण होइ णिद्वंधसेण खवओ परिच्छतो ॥1502

यदि आचार्य उस चलायमान चित्त वाले क्षपक को इस प्रकार से स्मरण नहीं करावे तो समझना चाहिये उस निर्देशी ने उस क्षपक को त्याग दिया है ।

एवं सारिजंतो कोई कम्मुवसमेण लभदि सदिं ।  
तह य ण लब्धिज सदिं कोई कम्मे उदिण्णम्मि ॥1503

इस प्रकार स्मरण दिलाने पर कोई-कोई क्षपक चारित्र मोह अथवा असातावेदनीय का उपशम होने से अयोग्य के विचार विषयक स्मृति को प्राप्त होते हैं कि अकाल में खाने पीने की इच्छा करना मेरे लिए योग्य नहीं है । जो मैं त्याग कर चुका उसे काल में भी कैसे ग्रहण करूँ? आदि, किन्तु कोई नोइन्द्रिय मतिज्ञानावरण कर्म की उदीरणा होने पर स्मृति प्राप्त नहीं करते ।

सदिमलभंतस्स वि कादव्यं पदिकम्ममद्वियं गणिणा ।  
उवदेसो वि सथा से अणुलोमो होदि कायव्वो ॥1504

स्मृति को जो प्राप्त नहीं होता, उसके प्रति भी आचार्य को निरन्तर प्रतिकार करते रहना चाहिये । तथा उसके अनुकूल उपदेश भी करते रहना चाहिये ।

अयोग्य के साथ श्री अयोग्य व्यवहार अनुचित

चेयंतो पि य कम्मोदयेण कोई परीसहपरब्दो ।  
उब्भासेज व उक्कावेज व भिंदेज आउरो पदिण्णं ॥1505  
ण हु सो कडुवं फरूसं व भणिदव्वो ण खीसिदव्वो य ।  
ण य वित्तासेदव्वो ण य वट्टुदि हीलणं कादुं ॥1506

कोई क्षपक चेतना को प्राप्त करके भी कर्म के उदय से परीषहों से हारकर यदि अयोग्य वचन बोले, या रुदन करे या अपनी व्रत प्रतिज्ञा को भंग करे तो भी उसके प्रति कटुक वचन बोलना उचित नहीं है, न उसका तिरस्कार करना चाहिये, न उसका हास्य करना चाहिये, न उसे त्रास देना चाहिये और न उसका अनादर करना चाहिये ।

फरूसवयणादिगेहिं दु माणी विष्फुरिओ तओ संतो ।  
उद्धाणमवक्मणं कुजा असमाधिकरणं वा ॥1507

कठोर वचन आदि से भडककर वह अभिमानी क्षपक संयम से च्युत हो सकता है या दुर्धान में लग सकता है अथवा सम्पत्क्व को त्याग सकता है ।

तस्य पदिण्णामेरं भित्तुं इच्छन्त्यस्स णिजवओ ।  
सव्वायरेण कवयं परीसहणिवारणं कुजा ॥१५०८

यदि वह अपनी प्रतिज्ञा रूपी मर्यादा को तोडना चाहे तो निर्यापकाचार्य उसकी रक्षा के लिए ऐसा कवच आदर पूर्वक करे जो परीषहों का निवारण कर सके ।

णिद्वं मधुरं पल्हादिण्ज हिदयंगमं अतुरिदं वा ।  
तो सीहावेदव्वो सो खवओ पण्णवंतेण ॥1509

आचार्य को स्नेह सहित, कानों को प्रिय, हृदय में सुख देने वाले तथा हृदय में प्रवेश करने वाले वचनों से क्षपक को धीरि-धीरि सम्बोधना चाहिये ।

रोगादंके सुविहिद वित्तुलं वा धिदिवलेण ।  
तमदीणमसंमूढो जिण पच्छूहे चरित्तस्स ॥1510

हे सुन्दर आचार वाले । तुम दीनता और मूढ़ता को त्यागकर चारित्र में बाधा डालने वाली छोटी या बड़ी व्याधियों को महती वेदना को धैर्यरूपी बल से जीतो । राग

और कोप का त्याग ही चरित्र है। व्याधि को दूर करने के उपायों में आदर करने वाले तथा व्याधि और वेदना से द्वेष करने वाला का चारित्र नष्ट होता है। अतः तुम्हे चारित्र के विघ्नों को जीतना चाहिये।

सब्वे वि य उवसग्गे परिसहे य तिविहेण णिजिणहि तुम् ।  
णिजिणिय सम्ममेदे होहिसु आराहओ मरणे ॥1511

हे क्षपक ! तुम सब उपसर्गों और परीषहों को मन-वचन-काय से जीतो। उपसर्ग और परीषहों के जीतने में जो दुःख होता है उससे न डरना मन से जीतना है। यह डरपोक है अतः दया करके उपसर्ग परीषह उसे दुःख नहीं देंगे ऐसी बात नहीं है। द्रव्यादि सहकारी कारणों के रहने पर असातावेदनीय कर्म उदय में आता है और उसकी शक्ति को रोकना शक्य नहीं होता तब वह कष्ट देता ही है धैर्यरूपी बलपूर्वक ऐसी भावना होना मन से जीतना है। मैं थक गया हूँ, मेरी इस अतिकष्टकर और दुःसह वेदना रूप अवस्था को देखो, मैं दुःख में जल रहा हूँ, कष्ट ने मुझे मार डाला इत्यादि दीन वचनों का उच्चारण न करना। मैंने पूर्व में अनेक बार भूख आदि परीषहों और उपसर्गों को सहा है। चिल्हाने पर भी ये छोड़ते नहीं हैं। केवल यह बेचारा धैर्य खोकर रोता है ऐसी निन्दा करते हैं। ये मुझे सन्मार्ग से डिगाने में समर्थ नहीं हैं। इस प्रकार के उदार वचन बोलना वचन से जीतना है। आँखों में और मुख पर दीनता का भाव न होना, मुख पर प्रसन्नता का रहना, विचलित न होना काय से जीतना है। इस प्रकार इन परीषहों और उपसर्गों को सम्यक् रूप से जीतने पर मरते समय तुम रत्नत्रय रूप से परिणत हो सकोगे। जिसका चित्त उपसर्ग और परीषह से व्याकुल रहता है वह आराधक नहीं हो सकता।

संभर सुविहिय जं ते मज्जम्मि चतुविधस्स संघस्स ।  
वृदा महापदिण्णा अहयं आराहइस्सामि ॥1512

हे सुचारित्र से सम्पन्न क्षपक ! तुमने चतुर्विध संघ के मध्य में जो महत्ती प्रतिज्ञा की थी कि मैं आराधना करूँगा उसे स्मरण करो।

को णाम भडो कुलजो माणो थोलाइदूण जणमज्जे ।  
जुज्जे पलाइ आवडिदमेतओ चेव अरिभीदो ॥1513

कौन कुलीन स्वाभिमानी शूरवीर मनुष्यों के बीच में अपनी भुजाओं को ठोक कर 'मैं युद्ध में इस प्रकार शत्रुओं को हराऊँगा' ऐसी घोषणा करके सामने आये शत्रु से ही डरकर भागना पसन्द करेगा।

थोलाइदूण पुव्वं माणी संतो परीसहादीहिं ।  
आवदिभित्तओ चेव को विसण्णो हवे साहू ॥1514

उसी प्रकार पूर्व में भूजाओं को ठोककर कौन स्वाभिमानी साधु परीषह आदि के सन्मुख आते ही खेद-खिन्न होगा।

आवडिया पडिकूला पुरओ चेव क्षमंति रणभूमि ।

अवि य मरिज रणे ते ण य पसरमरीण बइदंति ॥1515

जिन सुभटों के शत्रु उनके सन्मुख आते हैं वे सुभट शत्रुओं के आने से पूर्व ही युद्ध भूमि में पहुँच जाते हैं। वे युद्ध में मर जाये भले ही किन्तु शत्रुओं का उत्साह नहीं बढ़ने देते।

तह आवइपडिकूलदाए साहवो माणिणो सूरा ।

अइ तिव्ववेयणाओ सहंति ण य विगडिमुवयंति ॥1516

उसी प्रकार स्वाभिमान शूरवीर साधु आपत्तियों की प्रतिकूलता में अति तीव्र कष्ट भोगते हैं किन्तु विकार को प्राप्त नहीं होते अर्थात् दुर्भाग्यवश उपसर्ग परीषहों के उपस्थित होने पर रत्नत्रय की विराधना नहीं करते।

थोलाइयस्स कुलजस्स माणिणो रणमुहे वरं मरणं ।

ण य लज्जणयं काउं जावजीवं सुजणमज्जे ॥1517

भुजा स्फालन करनेवाले कुलीन अभिमानी के लिए युद्ध में सन्मुख मरना श्रेष्ठ है किन्तु सुजनों के मध्य में जीवन पर्यन्त लज्जा उठाना श्रेष्ठ नहीं है।

समणस्स माणिणो संजदस्स णिहणगमणं पि होइ वरं ।

ण य लज्जणयं काउं कायरदादीणकिविणतं ॥1518

उसी प्रकार स्वाभिमानी संयमी श्रमण का मर जाना श्रेष्ठ है किन्तु लज्जा जनक कार्य करना श्रेष्ठ नहीं है, कातरता-विपत्तियों से घबराना, दीनता कृपणता-कि मैं कुछ भी नहीं कर सकता आदि श्रेष्ठ नहीं है।

एयस्स अप्पणो को जीविदहेदुं करिज जंपणयं ।

पुत्पउत्तादीणं रणे पलादो सुजणलंछं ॥1519

एक अपने जीवन के लिये युद्ध भूमि से भाग कर कौन अपने पुत्र-पौत्र आदि के लिये अपवाद का कारण बनेगा और अपने-परिवार को लांछन लगायेगा।

तह अप्पणो कुलस्यं य संघस्स य मा हु जीवदत्थी तं ।

कुणसु जणे जंपणस किविणं कुब्बं सुगणलंछं ॥1520

उसी प्रकार हे क्षपक ! अपने जीवन के लिये परीषह आदि आने पर अपनी निर्बलता का परिचय देते हुए अपने कुल और संघ को लोकापवाद का पात्र मत बनाओ और अपने गण पर लांछन मत लगाओ।

गाढप्पहारसंताविदा वि सूरा रणे अरिसमक्खं ।

ण मुहं मंजंति सयं मरंति भिउडीमुहा चेव ॥1521

युद्ध में शूरवीर पुरुष जोरदार प्रहर से पीडित होने पर भी शत्रु के सामने से अपना मुख नहीं मोडते और मुख पर भी टेढ़ी किये हुए ही मरते हैं ॥

सुट्ठु वि अवइपत्ता ण कायरत्तंकरिंति सप्पुरिसा ।

कत्तो पुण दीणात्तं किविणात्तं वा वि काहिंति ॥1522

उसी प्रकार सत्पुरुष अत्यन्त आपत्ति आने पर भी कातर नहीं होते । तब वे दीनता या कायरता क्यों दिखायेंगे ?

केई अगिमदिगदा समंतओ अगिणा वि उज्जिंता ।

जलमज्जगदा व णरा अथंति अचेदणा चेव ॥1523

कितने ही सत्पुरुष आग में प्रवेश करके सब और से आग से जलने पर भी जल के मध्य में प्रविष्ट हुए मनुष्य की तरह अथवा अचेतन की तरह रहते हैं ।

तथ वि साहुक्कारं सगअंगुलिचालणेण कुव्वंति ।

केई करंति धीरा उक्किटिं अगिमज्जम्मि ॥1524

तथा आग के मध्य में भी रहते हुए अपने अगुलि संचालन के द्वारा साधुकार करते हैं कि कितना अच्छा हुआ कि मेरे अशुभ कर्म क्षय हुए । कितने ही धीर वीर पुरुष आग के मध्य में रहकर अपना आनन्द प्रकट करते हैं ।

जदिदा तह अण्णाणी संसारपवृणाए लेस्साए ।

तिव्वाए वेदणाए सुहसाउलया करिति धिंदि ॥1525

यदि संसार को बढाने वाली अशुभ लेश्या से युक्त अज्ञानी पुरुष संसारिक मुख की लालसा से तीव्र वेदना होते हुए भी धैर्य धारण करते हैं ।

किं पुण जदिणा संसारस्वदुखक्खयं करंतेण ।

बहुतिव्वदुक्खरसजाणएण ण घिदी हवदि कुज्जा ॥1526

तो जो क्षपक साधु संसार के सब दुःखों का क्षय करना चाहता है और चारों गतियों के तीव्र दुखों का स्वाद जानता है वह धैर्य धारण क्यों न करेगा ?

असिवे दुष्मिक्खे वा कंतारे भएव आगाडे ।

रोगहिं व अभिभूदा कुलजा माणं ण विजहिंति ॥1527

भारी रोग में, दुर्भिक्ष में, भयानक वन में, अत्यन्त प्रगाढ भय में तथा रोगों से ग्रस्त भी कुलीन पुरुष स्वाभिमान को नहीं छोड़ते ।

ण घियंति सुरं ण य खंति गोयमं ण य पलंडुमादियं ।

ण य कुव्वंति विकम्मं तहेव अण्णंवि लज्जण्यं ॥1528

वे मदिरा पान नहीं करते, गोमांस नहीं खाते, लहसुन प्याज आदि नहीं खाते, दुसरे का जूठा खाना आदि बुरे काम नहीं करते, इसी प्रकार अन्य भी लज्जास्पद काम नहीं करते ।

किपुण कुलगणसंघस्स जसमाणिणो लोयपूजिदा साधू ।

माणं पि जहिय काहंति विकम्मं सुजणलज्जण्यं ॥1529

तब कुल गण और संघ के यश सम्पादन का अंहकार करने वाले लोकपूजित साधु स्वाभिमान त्याग कर साधुजन के लिये लज्जा के योग्य बुरा कर्म करेंगे क्या ? कभी नहीं करेंगे ।

जो गच्छिज विसादं महल्लमप्पं व आवदिं पत्तो ।

तं पुरिसकादरं विंति धीरपुरिसा हु संदुत्ति ॥1530

जो छोटी या बड़ी विपत्ति आने पर खिन्न होता है उस कायर पुरुष को धीर पुरुष नपुसक कहते हैं ।

मेरुव्व णिप्पकंपा अक्खोभा सागरुव्व गंभीरा ।

धिदिवंतो सप्पुरिसा हुंति महल्लावर्डै वि ॥1531

सज्जन पुरुष महती विपत्ति में भी सुमेरू की तरह अकम्प, सागर की तरह गम्भीर और धैर्यशील रहते हैं ।

केई विमुत्तसंगा आदारोविदभरा अपडिकम्मा ।

गिरिपृभारमभिगदा बहुसावदसंकडं भीमं ॥1532

धिदिधणियवद्ध कच्छा अणुत्तर विहारिणो सुदसहाया ।

साहिंति उतमडुं सावददाढंतरगदा वि ॥1533

कितने ही साधु समस्त परिग्रह को त्यागकर, अपने आत्मा में आत्मा को आरोपित करके प्रतिकर रहित होकर में बहुत से व्याघ्र आदि हिंसा जन्तुओं से भेर भयंकर पर्वतों के शिखरों पर जाकर दृढ़ धैर्य को अपनाकर, उत्कृष्ट चारित्र पूर्वक श्रुतज्ञान की सहायता से सिंहादि के मुँह में जाकर भी उत्तमार्थ रत्नत्रय की साधना करते हैं ।



## प्रकरण-9

## निर्यापकत्व के गुण (हितोपदेशी के हानी-लाभ प्रदर्शित्व गुण)

## आयोग्य भाव के कारण

खवयस्स तीरपत्तस्स वि गुरुगा हॉंति रागदोसा हु ।

तम्हा छुहादिएहिं य खवयस्स विसोधिया होई ॥1461भ. आ.

यद्यपि क्षपक संसार समुद्र के किनारे पहुँच जाता है फिर भी उसे तीव्र राग-द्वेष होते हैं । अतः भूख प्यास की परिषहों के कारण क्षपक के अशुभ परिणाम होते हैं ।

## अपराध स्वीकार न करने का कारण

थोलाइदूण पुबं तप्पडिवक्खं पुणो वि आवण्णो ।

खवओ तं तह आलोचेदूं लज्जेज गरविदो ॥1462

क्षपक पूर्व में प्रतिज्ञा करता है कि दीक्षा लेने के दिन से समाधि धारण करने के दिन तक रत्नत्रय में जो दोष लगे हैं उन सबको मैं गुरु के सामने निवेदन करूँगा । ऐसी प्रतिज्ञा करके भी जब अपराध निवेदन का समय आता है तो अपना बड़प्पन जानकर क्षपक उस अपराध को जिस प्रकार वह किया गया उसी प्रकार से कहने में लज्जा करता है ।

## अपराध परिशोधन न करने के दोष

तो सो हीलणभीरु पूयाकामो ठवेणइत्तो य ।

णिजुहणभीरु वि य खवओ वि ण दोसमालावे ॥1463

पश्चात् वह क्षपक डरता है कि मेरे अपराध को जान कर ये सब मेरी अवज्ञा करेंगे । उसकी अभिलाषा अपनी पूजा कराने की है कि मेरी वंदना करे, मेरे लिए उठकर खड़े होवें किंतु अपराध ज्ञात होने पर तो पूजा नहीं करेंगे । वह अपने को सम्यक् आचार में स्थापित करना चाहता है । किन्तु अपराधी जानकर यह मुझे त्याग देंगे, इससे डरता भी है । अतः अपने अपराध और शरीर को त्याग ने के लिए तत्पर होते हुए भी वह गुरु से अपने दोषों को नहीं कहता ।

## आयोपाय विदर्शी गुण

तस्स अवायोपायविदंसी खवयस्स ओधपण्णवओ ।

आलोचेतस्स अणुजगस्स दंसेइ गुणदोसे ॥1464

उस अपने दोषों की आलोचना न करने वाले अथवा आलोचना करते हुए भी मायाचारी पूर्वक आलोचना करने वाले क्षपक को आय और उपाय को दिखलाने वाले

आचार्य आलोचना के गुण और आलोचना न करने के दोष सामान्य से बतलाते हैं कि जो अपना अपराध नहीं कहता उसको यह दोष होता है रत्नत्रय के विनाश को अपाय और रत्नत्रय के लाभ को उपाय कहते हैं । ‘‘उप’’ शब्द व्यर्थ है, ऐसा मान कर रत्नत्रय का “आऊ” अर्थात् शुद्धि और लाभ दोनों को दिखाने वाले आचार्य आयोपाय विदर्शी होते हैं ।

## मायाचारी के दोष

दुक्खेण लहड़ जीवो संसारमहणवम्मि सामण्णं ।

तं संजमं खु अबुहो णासेइ ससल्लमरणेण ॥1465

इस संसार का पार पाना बड़ा कठिन है इसलिए चारों गति में भ्रमण रूप संसार को महासमुद्र की उपमा दी है । उसमें भ्रमण करते हुए “श्रामण्य” अर्थात् चारित्र को - संयम को जीव बड़े कष्ट से प्राप्त करता है । अज्ञानी उस समय को सशल्य मरण से नष्ट कर देता है । यद्यपि मिथ्यात्व, माया और निदान के भेद से शल्य के अनेक भेद हैं । तथापि यहाँ प्रकरण वश मायाशल्य लिया है । मायाशल्य सहित मरण से अज्ञानी संयम को नष्ट करता है ।

शंका :- यहाँ तो “सामण्ण” शब्द से समानता ली गई है । उसे छोड़कर “संयम क्यों कहा ?

समाधान :- इसका अभिप्राय यह है कि द्रव्य में प्रवृत्ति न करने में निमित्त जो श्रामण्य है वही संयम है । लोग कहते ही हैं कि यह पाप कार्यों में प्रवृत्ति करता है अतः श्रमण नहीं है । अतः आत्मा में स्थित भाव शल्य दोषकारी है यह कहना उचित ही है ।

## अपराध मनवृत्ति से संबलेश्च एवं भ्रय

जह णाम दव्वसल्ले अणुद्वदे वेदनुदिदो होदि ।

तह भिक्खु वि ससल्लो तिव्वदुहद्दो भयोव्विग्गो ॥1466

जैसे शरीर में लगे बाण, काँटा आदि द्रव्य शल्य को न निकालने पर मनुष्य कष्ट से पीड़ित होता है । उसी प्रकार भाव शल्य से युक्त भिक्खु भी तीव्र दुखित होता है और भय से विचल होता है कि शल्य को दूर न करने पर मैं किस गति में जाऊँगा । इस प्रकार दृष्टान्त से अविरोध दिखलाया है ।

कटंकसल्लेण जहा वेधाणी चम्मखीलणाणी य ।

रप्फइयजालगत्तागदो य पादो पडदि पच्छा ॥1467

जैसे पैर में घुसने पर पहले पैर छिद्र होता है फिर उसमें मांस का अंकुर उग आता है और वह नाड़ी तक पहुँचता है । पीछे उस पैर में साँप की बाँबी जैसे दुर्गन्ध युक्त छिद्र हो जाते हैं ।

एवं तु भावसङ्गं लज्जागाखभएहि पठिबद्धं ।  
अप्यं पि अणुद्धरियं वदसीलगुणे वि णासेइ ॥468

इसी प्रकार लज्जा भय और गारव से प्रतिबद्ध थोड़ा सा भी भावशल्य यदि दूर न किया जाये तो ब्रत शील और गुणों को नष्ट करता है। लज्जा वश साधु अपने अपराध को छिपाता है। या अपराध प्रकट करने पर गुरुजन कुद्ध होंगे, मुझे त्याग देंगे अथवा बड़ा प्रायश्चित्त देंगे इस भय से दोषों को छिपाता है। अथवा मेरी जो महत्ती प्रसिद्धि है कि यह तपस्वी उत्तम संयमी है वह नष्ट हो जायेगी इस भय से दोषों को छिपाता है। यह माया शल्य है। इसे यदि दूर नहीं किया गया तो क्षपक के ब्रत शील गुण नष्ट हो जाते हैं।  
तो भट्टबोधिलाभो अणंतकालं भवण्णए भीमे ।

जम्मणमरणावत्ते जोणिसहस्साउले भमदि ॥469

पीछे दीक्षा धारण करके जो बुद्धिलाभ किया था वह नष्ट हो जाता है और चौरासी हजार योनियों से भरे, और जन्म-मरण रूपी भवर्णों से युक्त भयंकर भव समुद्र में अनन्त काल तक भ्रमण करता है।

तत्थ य कालमण्टं धोरमहावेद-णासु जोणीसुं ।  
पच्चंतो पच्चंतो दुक्खसहस्साइ पप्पेदि ॥470

और उस भव समुद्र में भयंकर महावेदना वाली योनीयों में भ्रमण करता हुआ अनन्त काल तक हजारों दुःख भोगता है।

तं न खमं खु पमादा मुहृत्तमवि अत्थिदुं ससल्लेण ।  
आयरियपादमूले उद्धरिदव्वं हवदि सङ्गं ॥471

इसलिये संसार से भीत यति को प्रमाद वश एक मुहूर्त मात्र के लिए भी शल्य सहित रत्नत्रय के साथ रहना उचित नहीं है। उक्त गुण वाले आचार्य के पादमूल में उसे अपने शल्य को निकाल देना चाहिए।

तम्हा जिणवयणरुई जाइजरामरणदुक्खवित्तथा ।  
अजब मदवसं पण्णा भयलज्जाउ पमोन्नूण ॥472

अतः जिनागम के श्रद्धालु और जन्म, जरा, मुत्यु के दुःख से भीत क्षपक को भय और लज्जा को छोड़ आर्जब और मार्दव से युक्त होना चाहिए।

उप्पाडिता धीरो मूलमसेसं पुणब्भवलये ।  
संवेगजणियकरणा तरंति भवसावरमणंतं ॥473

धीर क्षपक पुनर्जन्म रूपी लता के मूल सम्पूर्ण शल्य को उखाड़ कर संसार के भय से उत्पन्न किये चारित्र को धारणकरके अनन्त भव सागर को तिर जाते हैं।

इय जइ दोसे य गुणे ण आलोयणाए दंसेइ ।

णियत्तइ सो तत्तो खवओ ण गुणे परिणमइ ॥474

इस प्रकार यदि गुरु क्षपक को आलोचना अर्थात् अपने अपराध को कहने के गुण और दोष न बतलावे तो वह क्षपक पूर्वोक्त माया शल्य दोष से निवृत न हो और निःशल्य नामक गुण से युक्त न हो।

आलोचनगुणदोसे कोई सम्मंपि पण्णविजंतो ।

तिव्वेहिं गारवादिहिं सम्मं बालोचए खवए ॥475

कोई क्षपक आलोचना के गुण और दोषों को अच्छी तरह समझने पर भी तीव्र, गारव, आदि के कारण सम्यक् रूप से अपने दोषों को नहीं कहता। यहाँ आदि पद से लज्जा, भय और कष्ट को सहन न करना लिए गए हैं।

हितोपदेशी के मधुर/स्नेहील गुण

णिद्ध मधुरं हिदयंगमं च पल्हादणिजमेगंते ।

तो पल्हावेदव्वो खवओ सो पण्णवंतेण ॥477

जो अपना अपराध नहीं कहता उस क्षपक को समझाने वाले आचार्य को एकान्त में स्नेह से भरे, कानों को सुनकर और हृदय में प्रवेश करने वाले सुखदायक वचनों से शिक्षा देना चाहिए। प्राप्त सन्मार्ग रत्नत्रय के निरतिचार पालन में सावधान आयुष्मन् लज्जा, भय और मान छोड़कर दोषों को निवेदन करो। गुरुजन माता-पिता के समान होते हैं उनसे कहने में लज्जा कैसी? वे अपने दोष की तरह दूसरे यतियों के भी दोष किसी से नहीं कहते। जो यति धर्म पर मिथ्या दोषारोपण को नष्ट करने में तत्पर रहते हैं वे क्या अपयश फैला सकते हैं? मोक्ष मार्ग में प्रधान सम्यग्दर्शन है और यतिजन में दृष्ण लगाना सम्यग्दर्शन का अतिचार है। रत्नत्रयरूपी कमलों का वन यदि अतिचार रूपी हिमपात से नष्ट हो तो वह शोभित नहीं होता। पर निन्दा से नीचगोत्र कर्म का आश्रव होता है। जो दूसरों की निन्दा करता है वह स्वयं अनेक जन्मों में निन्दा का पात्र बनता है। दूसरे के मन को असह्य संताप देने वाले के असाता वेदनीय कर्म का बंध होता है। साधुजन भी निन्दा करते हैं कि अपने धर्मपुत्र को यह इस प्रकार अपयश रूप कीचड़ से क्यों लिप्त करता है। इस तरह दूसरों के दोषों को प्रकट करना अनेक अनर्थों का मूल है। कौन समझदार उसे करना पसंद करेगा?

हितोपदेशी के कटुक/कठोर गुण

णिद्धं मदुरं हिदयंगमं च पल्हादणिजमेगंते ।

कोई तु पण्णविजंतओ वि णालोचए सम्मं ॥478

स्निध, मधुर, हृदयग्राही और सुखदायक वचनों के द्वारा एकान्त में समझाने पर भी कोई क्षपक अपने दोषों को सम्यक् रूप से नहीं कहता।

तो उपीलेदव्वा खवयस्सोपीलएण दोसा से ।  
वामेङ्ग मंसमुदरमवि गदं सीहो जह सियालं ॥४७९

तब जैसे सिंह स्यार के पेट में गये मांस को भी उगलवाता है वैसे ही अवपीडक आचार्य उस क्षपक के अंतर में छिपे हुए माया-शल्य दोषों को बाहर निकालता है।

हमारे सामने से दूर हो जाओं ! आपको हमसे अब क्या प्रयोजन है ? जो अपने शरीर में लगे मल को धोना चाहता है वह काँच के समान निर्मल जल वाले सरोवर के पास जाता है । अर्थात् जो महान् रोग रूपी सर्प से डँसा गया है और उसे दूर करना चाहता है वह वैद्य के पास जाता है । इसी प्रकार जो रत्नत्रय में लगे अतिचारों को दूर करना चाहता है उसे गुरुजन के पास जाना चाहिए । आपको अपने रत्नत्रय की शुद्धि करने में आदर नहीं है तब इस क्षपक का रूप धारण करने से क्या लाभ ? यह सल्लेखना केवल चार प्रकार के आहार का त्याग करने मात्र से नहीं होती । किन्तु इसके लिए कथायों को कृश करना चाहिए । तभी यह सल्लेखना होती है । तथा संवर निर्जरा भी करना चाहिए । कथाय तो नवीन कर्मों का ग्रहण बंध और उनके स्थिति बंध को करती है अतः वह त्यागने योग्य है ।

उन कथायों में माया अत्यन्त खराब है । वह तिर्यच गति में ले जाती है । आप उसे छोड़ने में असर्मथ है अतः आप संसार समुद्र के तिर्यच भव रूपी भवंत्र में फँस गये हैं । वहाँ से निकलना अत्यन्त कठीन है । वस्त्र मात्र के त्याग से अपने को निर्ग्रन्थ मानने का अभिमान करना भी द्युष्टा है । यदि कोई इतने से ही निर्ग्रन्थ हो तो पशु भी निर्ग्रन्थ कहे जायेंगे । चौदह प्रकार की अभ्यन्तर परिग्रह के त्याग से भावनैर्ग्रन्थ्य होता है । वही मुक्ति का उपाय है । भावनैर्ग्रन्थ्या का उपाय है दस प्रकार की बाह्य परिग्रह का त्याग । वह मुमुक्ष के लिए उपयोगी है । जीव और पुद्गल द्रव्य के सम्बन्ध मात्र कर्मबन्ध नहीं होता किन्तु उसके निमित्त से होने वाले जीव के परिणामों के निमित्त से कर्मबन्ध होता है । अतिचार सहित सम्यग्दर्शन आदि मुक्ति के उपाय नहीं हैं । सम्यग्दर्शन, सम्यज्ञान, और सम्यग्चारित्र मोक्ष का मार्ग है । क्या यह जिनागम का वचन आपके कानों में नहीं गया ? निरतिचार होना ही दर्शन, ज्ञान और चारित्र की समीचीनता है और वह निरतिचार गुरु के द्वारा कहे प्रायश्चित्त को करने पर ही होती है । गुरु भी उसी को प्रायश्चित्त देते हैं जो आलोचना करता है । अतः आप या तो दूर भव्य हैं या अभव्य हैं । यदि निकट भव्य होते तो इस प्रकार का महा-मायारूप शल्य क्यों होता ? तुम यतिजनों के द्वारा वंदना करने योग्य नहीं हो । क्योंकि आगम में कहा है-

बुद्धिमान को संयमी और सम्यक् रूप से समाहित श्रमण की वंदना करनी चाहिए । जीवन मरण में, लाभ अलाभ में, निन्दा प्रशंसा में जिसका चित्त समान रहता है

वही श्रमण या समान होता है । दोष कहने पर मेरी निन्दा करेंगे, प्रशंसा नहीं करेंगे इसलिए आप आलोचना नहीं करते तब आप कैसे (समान) समान हैं और कैसे वंदनीय हैं । इस प्रकार कहकर अवपीडक आचार्य उसके मुख से दोष उगलवाते हैं ।

उज्जस्सी तेजस्सी वच्चस्सी पहिदकितिवायरिञ्जो ।

सीहाणुओ य भणिओ जिणेहिं उपीलगो णाम ॥४८०

जो ओजस्वी, बलवान, तेजस्वी- प्रतापवान, वर्चस्वी-प्रश्नों का उत्तर देने में कुशल प्रसिद्ध कीर्तिशाली और सिंह के समान आचार्य होते हैं उन्हें जिन भगवान् ने उत्पीडक नाम से कहा है ।

पिल्लेदूण रडतं पि जहा बालस्स मुहं विदारिता ।

पज्जेङ्ग घदं माया तस्सेब हिदं विचिंती ॥४८१

जैसे बालक के हित की चिन्ता में तत्पर माता चिल्लाते हुए भी बालक को पकड़कर उसका मुहं फाड़कर धी पीलाती है ।

तह आयरिञ्जो वि अणुजयस्स खवयस्स दोसवीहरणं ।

कुणदि हिदं से पच्छा होहिदि कडु ओसहं वत्ति ॥४८२

उसी प्रकार आचार्य भी कुटिल क्षपक के माया शल्यरूप दोषों को निकालते हैं । और वह कडवी औषधी की तरह पीछे उस क्षपक के लिए हितकारी होता है ।

जिभाए वि लिहंतो ण भद्दो जत्थ सारणा णात्थि ।

पाएण वि ताडिंतो स भद्दओ जत्थ सारणा अत्थि ॥४८३

जो गुरु शिष्य के दोषों का निवारण नहीं करता वह जिन्हा से मधुर बोलने पर भी भद्र नहीं है । और जो गुरु दोषों का निवारण करता हुआ पैर से मारता भी है वह भद्र है ।

दोषों का निवारण करने वाली आचार्य की भद्रता एवं दुर्लभता

सुलहा लोए आदट्ठचिंतगा परहिदम्मि मुक्कधुरा ।

आदट्ठं व परट्ठं चिंतगा दुल्लहा लोए ॥४८४

अपने काम में तत्पर किन्तु दूसरों का हित करने में आलसी मनुष्य लोक में बहुत हैं । किन्तु अपने कार्य की तरह दूसरों के कार्य की चिंता करने वाले मनुष्य लोक में दुर्लभ हैं ।

आदट्ठमेव चिंतेदुमुड्हिदा जे परट्ठमवि लोगे ।

कडुय फसेहिं साहेति ते हु अदिदुल्लहा लोए ॥४८५

जो अपने ही कार्य की चिंता में तत्पर होते हुए दूसरों के कार्य को भी कठोर और कटुवचनों से साधते हैं वे पुरुष लोक में अत्यन्त दुर्लभ हैं ।

आचार्य द्वाय किये जाने वाले उपकारक

खवयस्स जड़ ण दोसे उगालेई सुहमे व इदरे वा ।

ण पियत्तइ सो तत्तो खबओ ण गुणे य परिणमइ ॥1486

आचार्य यदि क्षपक को पीडित न करे तो वह माया शल्य से न निकले । और माया शल्य से निकले बिना निरतिचार रत्नत्रय गुण में प्रवृत्त न हो । इस प्रकार आचार्य के द्वारा किये जाने वाले उपकारक प्रकट करते हैं- यदि आचार्य क्षपक के सूक्ष्म अथवा स्थूल दोषों को न उगलवाये तो वह क्षपक उन सूक्ष्म अथवा स्थूल दोषों से निवृत न हो और न गुण में प्रवृत्त होने लगे और दोषों को दूर किये बिना तथा गुण में लगे बिना आराधक कैसे हो सकता है? आराधना के लिए गुरु के पास आकर भी यदि गुरु अवपीडक न हो तो उक्त बात नहीं बन सकती है ।

तम्हा गणिणा उप्पीलणेण खवयस्स सव्वदोसाहु ।

ते उग्गालदेव्वा तस्सेव हिंदं तथा चेव ॥1487

इसीलिए उत्पीडक आचार्य को क्षपक के सब दोष उगलवाना चाहिए । क्योंकि क्षपक का हित इसी में है ।

ठितोपदेशी के दूसरों को दोष न कठने का गुण

लोहेण पीदमुदयं व जस्स आलोचिदा अदीचारा ।

ण परिस्सवंति अण्णतो सो अप्परिस्सवो होदि ॥1488

जैसे तपाये हुए लोहे के द्वारा पिया गया जल बहार नहीं जाता वैसे ही जिस आचार्य से कहे गये दोष अन्य मुनियों पर प्रकट नहीं होते, वह आचार्य अपरिश्राव गुण से युक्त होता है ।

दंसणणाणादिचारे वदादिचारे तवादिचारे य ।

देसच्चाए विविधे सव्वच्चाए य आवण्णो ॥1489

किसी के सम्यग्दर्शन में अतिचार लगा हो, अथवा ज्ञान में अतिचार लगा हो, या व्रतों में अतिचार लगा हो, या तप में अतिचार लगा हो, यह एक देश से अथवा सर्व देश से अतिचार लगा हो तो ।

सम्यग्दर्शन के अतिचार :- शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मिथ्यादृष्टी की प्रशंसा और संस्तव । ज्ञान के अतिचार है- असमय में स्वाध्याय श्रृत अथवा श्रृत के धारी की विनय न करना, अनुयोग आदि को ग्रहण करने में उसके योग्य अवग्रह न करना, गुरु का नाम छिपाना, व्यंजन शब्द छोड़ जाना या अधिक जो उसमें नहीं हैं बोलना और अर्थ का अन्यथा कथन करना । तप अनशन आदि के अतिचार है- स्वयं भोजन न करते हुए भी दूसरों को भोजन कराना, मन बचन काय से दूसरों को भोजन की अनुमति देना,

स्वयं भूख से पीडित होने पर मन से आहार की अभिलाषा करना, मुझे पारणा कौन करायेगा, अथवा कहाँ पारणा होगी, इत्यादि चिंता अनशन तप के अतिचार हैं । अथवा रसीले आहार के बिना मेरी थकान दूर नहीं होती, प्रचूर निंद्रा में पड़कर छहकाय के जीवों की बाधा में मन या बचन या काय से प्रवृत्ति होना । मैंने यह संकलेश कारी उपवास व्यर्थ ही किया यह संतापकारी है इसे नहीं करूँगा इस प्रकार का संकल्प भी अनशन का अतिचार है ।

अवमौदर्यतप के अतिचार- मन से बहुत भोजन में आदर, दूसरों को बहुत भोजन कराने की चिंता, जब तक आपकी तृप्ति हो तब तक भोजन करो ऐसा कहना, मैंने बहुत भोजन किया ऐसा कहने पर आपने अच्छा किया ऐसा कहना, हाथ के संकेत से कंठ देश को स्पर्श करके बतलाना कि मैंने आकृष्ट भोजन किया ।

वृत्तिपरिसंख्यान तप के अतिचार :- सात घर में प्रवेश करूँगा, या एक ही मोहल्ला में जाऊँगा, वा द्रिरिद्रि के घर ही जाऊँगा । इस प्रकार का दाता पुरुष या दात्री स्त्री के द्वारा दिया गया आहार ग्रहण करूँगा । ऐसा संकल्प करके दूसरे को भोजन कराना है, इस भाव से सात घर से अधिक घरों में प्रवेश करना और एक मोहल्ले से दूसरे मोहल्लों में जाना । रसपरित्यागतप के अतिचार :- सरों में अति आसक्ति, दूसरे को रसयुक्त आहार का भोजन कराना, अथवा रसयुक्त आहार के भोजन की अनुमति । ये अतिचार हैं ।

कायक्लेशतप के अतिचार :- गर्मी से पीडित होने पर शीतल द्रव्य की प्राप्ति की इच्छा होना, मेरा संताप कैसे दूर हो यह चिंता होना, पूर्व में भोगे हुए शीतल द्रव्यों और शीतल प्रदेशों को याद करना, कठोर धूप से द्रेष करना, शीतल प्रदेश से अपने शरीर को पीछे से शोधे बिना धूप में या गर्मस्थान में प्रवेश करना अथवा धूप से सन्तप्त शरीर को पीछे से शोधे बिना छाया में प्रवेश करना आदि ।

वृक्ष के मूल में जाकर हाथ, पैर अथवा शरीर से जलकायिक जीवों को पीड़ा देना शरीर में लगे जल के कर्णों को हाथ वगैरह से पौछना हाथ या पैर से शिलातल आदि पर पड़े जल को दूर करना, कोमल गीली भूमि पर सोना, जल के बहने के नीचले प्रदेश में ठहरना, निश्चित स्थान पर रहते हुए कब वर्षा होगी ऐसी चिंता करना अथवा वर्षा होने पर कब रुकेगी, ऐसी चिंता करना, वर्षा से बचने के लिए छाता आदि धारण करना ।

अभ्रावकाश के अतिचार :- सचित्त भूमि पर जिसमें त्रस-सहित हरितकाय हो तथा छिप वाली भूमि पर सोना, भूमि और शरीर को पीछे से शुद्ध किये बिना सोते हुए हाथ-पैर संकोचना फैलाना, करवट लेना अथवा शरीर खुजाना । बर्फ और वायु से पीडित होने पर 'कब ये बंद होगी' ऐसी चिंता करना, बांस के पत्ते वगैरह से शरीर पर गिरे बर्फ को

हटाना, अथवा बर्फ से घटन करना, इस प्रदेश में अधिक वायु चलती है ऐसा संकलेश करना, अथवा शीत दूर करने के साधन आग, ओढ़ने के वस्त्र आदि का स्मरण करना। प्रायश्चित्त के अतिचार :- आलोचना प्रायश्चित्त के अतिचार “आकम्पिय अणुमाणिय” इत्यादि आगे कहे गए हैं। अपने लगे अतिचारों में मन से ग्लानी का न होना अतिचार है। अज्ञान से, प्रमाद से, कर्मों की गुरुता से, और आलस्य से मैंने यह अशुभकर्म के बन्ध में निमित्त कार्य किया यह बुरा किया यह जुगुप्सा है। उसका न होना प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त का अतिचार है। उक्त आलोचना और प्रतिक्रमण के अतिचार तदुभय प्रायश्चित्त के अतिचार है। भावपूर्वक विवेक का न होना विवेक प्रायश्चित्त का अतिचार है। शरीर से ममत्व न हटना, और अशुद्धि ध्यान रूप परिणति तथा कायोत्सर्ग के दोष व्युत्पर्ग प्रायश्चित्त के अतिचार तप के अतिचार पहले कहे हैं। मेरी दीक्षा छेदने से मैं छोटा हो गया, यह संकलेश छेद प्रायश्चित्त का अतिचार है। भावपूर्वक रत्नत्रय को ग्रहण न करना मूल नामक प्रायश्चित्त का अतिचार है।

अतिचार के दो प्रकार है - देशातिचार और सर्वातिचार। मन-वचन-काय और कृत-कारित-अनुमोदन के भेद से देशातिचार के अनेक भेद हैं।

### दोष कथक जिनधर्मी नर्ही

आयरियाणं वीसत्थदाए भिक्षु कहेदि सगदोसे ।  
कोई पुण णिद्वम्मो अण्णेसिं कहेदि ते दोसे ॥1490॥

भिक्षु विश्वास पूर्वक अपने आचार्यों से कहता है। कोई आचार्य जो जिन भगवान् के द्वारा कहे गये धर्म से भ्रष्ट होता है वह भिक्षु के द्वारा आलोचित दोषों को दूसरों से कह देता है कि इसने यह अपराध किया है अर्थात् ऐसे करने वाला आचार्य जिनधर्म से बाह्य होता है।

### दोष कथन से मिथ्यात्व की आराधना

तेवं रहस्यं भिदंतएण साधु तदो य परिचत्तो ।  
अप्पा गणो य संघो मिच्छत्ताराधणा चेव ॥1491॥

उस आलोचित दोष को प्रकट करने वाले आचार्य ने ऐसा करके उस साधु का ही त्याग कर दिया। क्योंकि उसने अपने चित्त में यह विचार नहीं किया मेरे द्वारा इसके दोष प्रकट कर देने पर यह लज्जीत होकर दुःखी होगा, अथवा आत्मधात कर लेगा, अथवा कुद्ध होकर रत्नत्रय को ही छोड़ देगा, तथा उस आचार्य ने अपनी आत्मा का त्याग किया, गण का त्याग किया, संघ का त्याग किया। इतना ही नहीं उसके मिथ्यात्व की आराधना दोष भी होता है।

### दोष कथक साधु के संघ से बहिष्कार करने योग्य-

लज्जाए गारवेण व कोई दोसे परस्स कहिदोवि ।

विपरिणामिज्ज उधावेज व गच्छेज वाध मिच्छतं ॥1492॥

नियर्पकाचार्य के द्वारा दूसरे से साधु के गुप्त दोष कहने पर कोई क्षपक लज्जावश या मान की गुरुतावश विपरीत परिणाम कर सकता है। यह मेरा गुरु नहीं है। यदि मैं इसे प्रिय होता तो यह मेरा दोष क्यों कहता। यह गुरु मेरे बारे में चलते-फिरते प्राण है ऐसा जो मैं सोचता था वह आज नष्ट हो गया, इस प्रकार की चिंता विपरीत परिणाम है। अथवा दोष प्रकट कर देने से कुपित होकर रत्नत्रय को छोड़ सकता है।

### दोष कथक आत्मा के त्यागी

कोई रहस्यभेदे कदक पदोसं गदो तमारिं ।

उद्दावेज व गच्छं भिदेज व होज्ज पडिणीओ ॥1493॥

रहस्य भेद करने पर कोई क्षपक द्वेषी बनकर उस आचार्य को मार सकता है अथवा गण में भेद डाल सकता है कि इस स्नेह रहित आचार्य से क्या लेना देना है? जैसे इसने मेरा अपराध प्रकट कर दिया उसी प्रकार तुम्हें भी अपराध निवेदन करने पर दोष लगा ऐसा कहकर अन्य साधुओं को विरोधी बनाकर गण में भेद डाल सकता है। अथवा विरोधी हो सकता है।

### दोष कथक गण/ संघ के त्यागी

जह धरिसिदो इमो तह अमं पि करिज धरिसणमिमोति ।

सब्बो वि गणो विपरिणमेज छंडेज वायरिं ॥1494॥

जैसे इस आचार्य ने अमुक साधु का दोष प्रकट किया उसी प्रकार यह हमारा दोष भी प्रकट कर देगा, ऐसा सोचकर समस्त गण-गण से अलग हो सकता है अथवा आचार्य का त्याग कर सकता है।

**शंका :-** इस गाथा में तो कहा है कि गण आचार्य को छोड़ देता है और पूर्व गाथा में कहा है कि आचार्य ने गण का त्याग किया। इन दोनों कथनों की संगति नहीं बैठती?

**समाधान :-** अतः दोषों को प्रकट करने वाले आचार्य ने गण का त्याग किया अतः गण भी उसे छोड़ देता है।

तह चेव पवयर्णं सव्वमेव विपरिणायं भवे तस्स ।

तो से दिसावहारं करेज णिजुहणं चावि ॥1495॥

जिसमें रत्नत्रय “प्रोच्येते” कहा जाता है वह प्रवचन है इस व्युत्पत्ति के अनुसार प्रवचन शब्द का अर्थ यहाँ संघ है। सभी संघ आचार्य के विरुद्ध हो सकता है और आचार्य पद को छीन सकता है अथवा उसका त्याग कर सकता है।

सगणे व परगणे वा परपरिपवादं च मा करेजाह ।  
अच्चासादणविरदा होह सदा वजभीरु य ॥३७१  
अपने गण में अथवा दूसरे गण में दूसरो की निंदा नहीं करनी चाहिए। तथा अति आसादना से विरत रहो और सदा पाप से डरो।  
आयासवेरभयदुक्खसोबलहुगत्तणाणि य करेइ ।  
परणिंदा वि हु पावा दोहगकरी सुयणवेसा ॥३७२  
पर निंदा आयास, वैर, भय, दुःख, शोक और लघुता को करती है, पाप रूप है, दुर्भाग्य को लाती है और सज्जनों को अप्रिय है।  
किच्चा परस्स णिंदं जो अप्पाणं ठवेदुमिच्छेज ।  
सो इच्छादि आरोग्यं पराम्मि कडुओसहे पीए ॥३७३  
जो पर की निन्दा करके अपने को गुणी कहलाने की इच्छा करता है वह दूसरे द्वारा के कडवी औषधी पीने पर अपनी नीरोगता चाहता है। अर्थात् जैसे दूसरे के औषधी पीने पर आप निरोग नहीं हो सकता है, वैसे ही दूसरे की निन्दा करके कोई स्वयं गुणी नहीं बन सकता।  
ददूण अण्णदोसं सप्पुरिसो लजिओ सयं होइ ।  
रक्खड़ य सयं दोसंव तयं जणजंपणभाएण ॥३७४  
सत्पुरुष दूसरों के दोष देखकर स्वयं लजित होता है। लोकपवाद के भय से वह अपनी तरह दूसरों के भी दोषों को छिपाता है।  
अप्पो वि वरस्स गुणो सप्पुरिसं पप्प बहुदरो होदि ।  
उदए व तेल्लविंदु किह सो जंपिहिदि परदोसं ॥ ३७५  
दूसरे का छोटा सा भी गुण सत्पुरुष को पाकर अति महान् हो जाता है। जैसे तेल की बूंद पानी में फैलकर महान् हो जाती है तब वह सत्पुरुष दूसरे के दोष को कैसे कह सकता है?  
एसो मव्वसमासो तह जतह जह हवेज सुजणम्मि ।  
तुज्जां गुणेहिं जणिदा सव्वत्थ कि विस्मुदा कित्ती ॥३७६  
यह समस्त उपदेश का सार है। ऐसा यत्न करो जिससे सज्जनों में तुम्हारे गुणों में उत्पन्न हुई कीर्ति सर्वत्र फैले।  
एस अखंडियसीलो बहुसुदो य अपरोवतावी य ।  
चरण गुणसुदित्वोत्तिय घण्णस्स खु घोसणा भमदि ॥३७७  
यह साधु अखण्डित समाधि के धारी है, बहुशृत है, दूसरों को कष्ट नहीं देते, और भारित गुण में अच्छी तरह स्थित है। पुण्यशाली का यह यश सर्वत्र फैलता है।

बाढति भणिदूणं ऐदं णो मंगलेति य गणो सो ।  
गुरुगुणपरिणद भावो आणंदसुं णिवाणेइ ॥३७८  
इस प्रकार गुरु का उपदेश सुनकर संघ “हमें स्वीकार है” ऐसा कहकर आपके ये वचन हमारे लिए अत्यन्त मंगल कारक है, ऐसा कहता है। तथा गुरु के गुणों में मन लगाकर आनन्द के आसूँ गिराता है।  
भगवं अणुगग्हो मे जं तु सदेहोव्य पालिदा अम्हे ।  
सारणवारणपदिचोदणाआ धण्णा हु पावेंति ॥३७९  
भगवान्! आपका हम पर बडा अनुग्रह है। आपने अपने शरीर की तरह हमारा पालन किया है। तथा “यह करो” और “वह मत करो” इत्यादि शिक्षा दी है। भाग्यशाली ही ऐसी शिक्षा प्राप्त करते हैं।  
अम्हे वि खमावेमो जं अण्णाणा पमादरागेहिं ।  
पडिलोमिदा य आणा हिदोबंदेस करिंताण ॥३८०  
आपकी आज्ञा और हित का उपदेश करने पर हमने जो अज्ञान, प्रमाद और रागवश उसके प्रतिकूल आचरण किया, उसके लिए हम भी आपसे क्षमा माँगते हैं।  
सहिदय सकण्ण याओ दका सचक्ष्व य लद्धसिद्धिपहा ।  
तुज्ज वियोग ण पुणो णट्ठदिसाओ भविस्सामो ॥३८१  
आपने हमें हृदय युक्त अर्थात् विचार शील बनाया। हमें सपूर्ण बनाया अर्थात् आपके उपदेश सुनकर कानों का फल प्राप्त किया आपने हमें आँखे प्रदान की अर्थात् हमें शास्त्र स्वाध्याय में लगाया। तथा आपके प्रसाद से हमने मोक्ष का मार्ग प्राप्त किया। अब आपके वियोग से हम दिशाहीन हो जाएंगे। हमें कोई मार्ग दिखाने वाला नहीं रहेगा।  
सव्वजयजीवहिदए थेरे सव्वजगजीवणाथम्मि ।  
पवसंते य मरंते देसा किर सुण्णया होंति ॥३८२  
समस्त जगत् के जीवों का हित करने वाले, ज्ञान और तप से वृद्ध तथा समस्त जगत् के जीवों के स्वामी के अन्यत्र चले जाने पर अथवा मरण को प्राप्त होने पर देश शून्य हो जाते हैं।  
सव्वजयजीवहिदए थेरे सव्वजगजीवणाथम्मि ।  
पवसंते य मरंते होदि हु देसोथयारोव्य ॥३८३  
समस्त जगत् के जीवों के हितकारी, ज्ञान और तप से वृद्ध तथा सब जगत् के जीवों के स्वामी के अन्यत्र चले जाने या मरण को प्राप्त होने पर देश में अधंकार-सा छा जाता है।

सीलइहगुणहैहि दु बहुसुदेहिं अवरोवतावीहिं ॥ ३४

पवसंते य मरते देसा ओखंडिया होति ॥३४

शील से सम्पन्न और गुणों से समृद्ध, बहुश्रुत तथा दूसरों को संताप न देने वाले महर्षियों के प्रवास जाने पर या मरण को प्राप्त होने पर सब देश उजाड़ सा प्रतीत होते हैं।  
सब्वस्स दायगाणं समसुहदुक्खाणं णिप्पकंपाणं ॥३४

दुक्खं खु विसहिदुं जे चिरप्पवासो वरगुरूणं ॥३५

जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप का दान करने में तत्पर रहते हैं, सुख और दुःख में समझाव रखते हैं तथा परिषहों से विचलित नहीं होते उन महान् गुरुओं के वियोग का दुःख सहना अति कठिन है।

**दोष कथन से मिथ्यात्व की आराधना वर्णों ?**

जदि धरिसणमेरिसयं करेदि सिस्सस्स चेव आयरिओ ।

धिद्व अपुट्ठधम्मो समणोत्ति भणेज मिछ्जणो ॥३६

यदि आचार्य अपने शिष्यों को ही इस प्रकार दोष प्रकट करके दूषित करते हैं तो इन अपुष्ट धर्म वाले श्रमणों को धिक्कार है ऐसा मिथ्यादृष्टि लोग कहेंगे।

इच्चेवमादिदोसा ण होति गुरुणो रहस्सधारिस्स ।

पुट्ठेव अपुट्ठे वा अपरिस्साइस्स धीरस्स ॥३७

जो आचार्य पूछने पर अथवा बिना पूछे शिष्य के द्वारा प्रकट किये दोषों को दूसरों से नहीं कहता वह रहस्य को गुप्त प्रकट किये दोषों को दूसरों से नहीं कहता वह रहस्य गुप्त रखने वाला अपरिश्रावी होता है। और उसे ऊपर कहे दोष जरा भी नहीं छुते।



## प्रकरण-10

### विविध समाधि मरण के फल

**पंडित-पंडित मरण (मोक्ष)-** शास्त्रोक्त मार्ग से प्रवृत्ति करता हुआ साधु क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होने की इच्छा से अप्रमत्त गुणस्थान में धर्मध्यान करता है। पवित्र और जन्तु रहित एकान्त प्रदेश में, उस स्थान के स्वामी की आज्ञा प्राप्त करके, समभूमिभाग में शरीर को सीधा रखते हुए पल्यंकासन बांधकर अथवा वीरासन आदि लगाकर, अथवा दोनों पैरों को समरूप से रखते हुए खड़े होकर अथवा ऊपर को मुखकर शयन करते हुए या एक करवट से लेटकर पूर्व में कही विधि के अनुसार विशुद्ध लेश्यापूर्वक मोहनीय कर्म का क्षय करने में तत्पर होता हुआ ध्यान करता है तथा चतुर्दश पूर्वों का अर्थ श्रवण करने से उसकी बुद्धि निर्मल होती है अर्थात् उसके श्रुतज्ञानावरण का प्रबल क्षयोपक्षम होता है। प्रथम ही वह उस ध्यान के द्वारा अन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ का क्षय करता है फिर मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृतियों का क्षय करके क्षायिक सम्यदृष्टि होकर क्षपक श्रेणी के अभिमुख होने के लिए अप्रमत्त गुणस्थान में अधः प्रवृत्तकरण करता है। क्षायिक सम्यदृष्टि होकर वह क्षपक श्रेणी पर आगोहण करके प्रथम अपूर्वकरण करता है। उसे अपूर्वकरण इसलिये कहते हैं कि उसने इस प्रकार के परिणाम कभी भी नीचे के गुणस्थानों में प्राप्त नहीं किये थे। उसके पश्चात् वह साधु अनिवृत्ति करण नामक नवम गुणस्थान को प्राप्त करके निद्रानिद्रा, प्रचला-प्रचला, स्यानगृद्धि, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकगति, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप, उद्योत, तिर्यगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय जाति, दो इन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, तिर्यगति, इन सोलह कर्म प्रकृतियों का क्षय करके मध्य की आठ कषाय अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ का क्षय करता है। फिर क्रम से उसी नवम गुणस्थान में नपुंसक वेद, स्त्रीवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्ता, पुरुष वेद और संज्वलन, क्रोध, मान, माया का क्षय करता है। अन्त में संज्वलन लोभ का क्षय करता है। बादर कृष्टि के पश्चात् सूक्ष्मकृष्टि रूप लोभ का वेदन करता हुआ दसवें सूक्ष्म साम्पराय नामक गुणस्थान को प्राप्त करता है और वहाँ उसी सूक्ष्मसाम्पराय नामक संयम को प्राप्त करता है। सूक्ष्म लोभ कृष्टि का क्षय होने पर साम्पराय के पश्चात् क्षीण कषाय नामक बारहवें गुणस्थानवर्ती होता है। वहाँ वह एकत्व वितर्क विचार नामक ध्यान को ध्याता है। उस ध्यान तथा यथाख्यात चारित्र के द्वारा वह जीव के अन्यथा भाव में कारण शेष धातिकर्मों का एक साथ क्षय करता है। जैसे ताड़ के वृक्ष की मस्तक सूची, ऊपर का शाखा भाग टुट जाने पर समस्त ताड़वृक्ष ही नष्ट हो

जाता है वैसे ही समस्त मोहनीय कर्म के नष्ट होने पर कर्म नष्ट हो जाते हैं। उस क्षीणकषाय गुणस्थान के उपान्त्य समय में निद्रा, प्रचला नष्ट होती हैं और शेष धातिकर्म-पांच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पांच अन्तराय अन्तिम समय में नष्ट होते हैं। (भ. आ. गा. 2082 से 2096)

छद्मस्थ अवस्था से रहित उस महामुनि के अन्तराय कर्म का विनाश होने पर अन्तराय रहित अनन्तवीर्य होता है। अर्थात् क्षयोपक्षमिक वीर्य में तो वीर्यान्तराय का उदय होने पर विघ्न आ जाता है। किन्तु समस्त वीर्यान्तराय का क्षय होने पर प्रकट हुए अनन्त वीर्य में कोई विघ्न नहीं आता। केवल ज्ञान की प्राप्ति के अनन्तर जब तक शेष कर्मों की तथा अनुभूयमान मनुष्यायु -की समाप्त नहीं होती तब तक वह केवल ज्ञानी चारित्र को बढ़ाता हुआ उत्कृष्ट कुछ कर्म एक पूर्वकोटि तक और जग्न्य अन्तर्मुहूर्त मात्र काल तक विहार करता है। फिर अधातिकर्मों को नष्ट करने के लिए सत्य वचनयोग, अनुभयवचनयोग, सत्यमनोयोग, अनुभय मनोयोग, औदारिक काय योग, औदारिक मिश्र काययोग तथा कार्मण काययोग का निग्रह प्रारम्भ करता है। उत्कर्ष से छह मास आयु शेष रहने पर जो केवल ज्ञानी होते हैं वे अवश्य समुद्धात-जीव के प्रदेशों का शरीर से बाहर दण्ड आदि आकार रूप से निकलना-करते हैं। शेष समुद्धात-करते भी हैं और नहीं भी करते, उनके लिए भी कोई नियम नहीं है। जिनके नामकर्म, गोत्रकर्म, वेदनीयकर्म, की स्थिति आयु कर्म के समान होती है वे सयोग केवली जिन समुद्धात किये बिना शैलेशी अवस्था को प्राप्त होते हैं। किन्तु जिनकी आयु की स्थिति कम होती है और नामगोत्र और वेदनीय कर्मों की स्थिति अधिक होती है वे सयोग केवली जिन समुद्धात करके ही शैलेशी अवस्था को प्राप्त होते हैं अर्थात् अयोगकेवली होते हैं। अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहने पर चारों कर्मों की स्थिति समान करने के लिए समुद्धात करते हैं। जैसे गीला वस्त्र फैला देने पर वह शीघ्र सुख जाता है उतनी शीघ्र इकड़ा रखा हुआ नहीं सूखता। कर्मों की भी वैसी ही दशा जानना। आत्म प्रदेशों के फैलाव से सम्बद्ध कर्मरज की स्थिति बिना भोगे घट जाती है। समुद्धात करने पर स्थितिबन्ध कारण जो स्नेहगुण है वह नष्ट हो जाता है। और स्नेहगुण के क्षीण होने पर शेष कर्मों की स्थिति घट जाती है। सयोगकेवली जिन चार समयों में दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूर्ण समुद्धात करके क्रम से चार ही समयों में उसका संकोच करता है अर्थात् प्रथम समय में दण्डाकार, दूसरे समय में कपाट आकार, तीसरे समय में प्रतर रूप और चतुर्थ समय में समस्त लोक में व्याप्त हो जाते हैं। पांचवें समय में पुनः प्रतर रूप, छठे समय में कपाटरूप, सातवें समय में दण्डाकार, आठवें समय में मूल शरीराकार आत्म प्रदेश हो जाते हैं। इस प्रकार नाम,

गोत्र, और वेदनीय कर्मों की स्थिति आयु के समान करके मुक्ति की ओर बढ़ने वाले सयोगकेवली जिन योगों का निरोध करते हैं।

**योग निरोध का क्रम-** स्थूल काययोग में स्थित होकर बादर वचनयोग और बादर मनोयोग को रोकते हैं और सूक्ष्म काययोग में स्थित होकर सूक्ष्म वचनयोग को रोककर सयोगकेवली जिन सूक्ष्म काययोग में स्थित होते हैं। सूक्ष्म लेश्या के द्वारा सूक्ष्म काययोग से वह सातावेदनीय कर्म का बन्ध करते हैं तथा सूक्ष्मक्रिया नामक तीसरे शुक्लध्यान को ध्याते हैं। उस सूक्ष्मक्रिया नामक शुक्लध्यान के द्वारा काययोग का निरोध करके वह शीलों का स्वामी होता है तथा आत्मा के प्रदेशों के निश्चल हो जाने से उन्हें कर्मबन्धन नहीं होता क्योंकि कर्मबन्ध के निमित्तों का अभाव है। उस समय अयोग केवली होकर वह मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, पर्याप्ति, आदेय, सुभग, यशकीर्ति, साता या असातावेदनीय, त्रस, बादर, उच्चगोत्र और मनुष्यायु इन ग्यारह कर्म प्रकृतियों के उदय का भोग करते हैं। और यदि तीर्थकर होते हैं तो तीर्थकर सहित बारह प्रकृतियों का अनुभव न करते हैं। उसके पश्चात् अयोग केवली परम औदारिक, तेजस और कार्मण इन तीन शरीरों के बन्धन से छूटने के लिये समुच्छिन्नक्रिया अप्रतिपाती नामक चतुर्थ शुक्लध्यान को ध्याते हैं। इनका दूसरा नाम व्युपरतक्रिया निवर्ति है। इस ध्यान का काल ‘अ इ उ ऋ लृ’ इन पांच मात्राओं के उच्चारण में जितना काल लगता है उतना है। इतने काल बाले उस अन्तिम ध्यान के द्वारा आयोगकेवली गुणस्थान के उपान्त्य समय में बिना उदीरण के सब 72 कर्म प्रकृतियों को खपाते हैं उनका क्षयकर देते हैं और अन्तिम समय में तीर्थकर केवली बारह प्रकृतियों का क्षय करते हैं तथा सामान्य केवली ग्यारह प्रकृतियों का क्षय करते हैं। उनके नाम कर्म का क्षय होने से तेजस शरीर बन्ध कर भी क्षय हो जाता है। और आयुकर्म का क्षय होने से औदारिक शरीर बन्ध का क्षय हो जाता है। इस प्रकार बन्धन से मुक्त हुआ वह जीव वेग से जाने से ऊपर को जाता है। जैसे बन्धन से मुक्त हुआ अरण्ड का बीज ऊपर को जाता है। समस्त कर्म नोकर्मरूप भार से मुक्त होने के कारण हल्का हो जाने से वह ऊपर को जाती है। जैसे मिठी के लेप से रहित तुम्हीं जल में ढूबने पर भी ऊपर ही आता है। जैसे वेग से पूर्ण व्यक्ति ठहरना चाहिए हुए भी नहीं ठहर पाता है वैसे ही ध्यान के प्रयोग से आत्मा ऊपर को जाता है। अथवा जैसे आग की लपट स्वाभाव से ही ऊपर को जाती है वैसे ही कर्मरहित स्वाधीन आत्मा का स्वाभाव ऊर्ध्वगमन है। कर्मों का क्षय होते ही वह मुक्त जीव एक समय वाली मोड रहित गति से सात राजु प्रमाण आकाश के प्रदेशों का स्पर्श न करते हुए अत्यन्त तीव्र वेग से लोक के शिखर पर विराजमान हो जाता है। इस प्रकार इसी लोक में तैजस, कार्मण

और औदारिक शरीरों को त्याग कर सब प्रकार के प्रचार से मुक्त हुआ जीव, सिद्धिक्षेत्र में जाकर अपने टंकोल्कीर्ण ज्ञायक भाव स्वभाव में स्थित होकर मुक्त हो जाता है। उस सिद्धिक्षेत्र के नीचे स्थित आठवीं पृथिवी को कहते हैं-ईष्टप्राभार नाम की आठवीं पृथ्वी के कुछ ऊपर एक योजन पर लोक का शिखर स्थित है जो ध्रुव, अचल और अजर है। उस पर सिद्ध जीव तिष्ठता है। (भ. आ. 2100 से 2127 तक) इस प्रकार वे क्षपक पण्डितपण्डितमरण से सब दुखों का अन्त करते हैं और बिना बाधा के उत्कृष्ट निर्माण को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार सम्यादर्शन, सम्यज्ञान, सम्यक् चारित्र और सम्यक् तप रूप चार प्रकार की उत्कृष्ट आराधना की आराधना करके कर्म रूपी धूली से छूटकर उसी भव से मुक्ति प्राप्त करते हैं। (2153-2154)

#### मध्य समाधि के फल-

आराधयितु धीरा मज्जिममाराहणं चदुक्खबंधं ।

कम्परयविष्पमुक्ता तदिएण भवेण सिङ्गांति ॥2155

उक्त चार भेद रूप मध्य में आराधना की आराधना करके धीर पुरुष कर्म रूपी धूली से छूटकर तीसरे भव में मुक्ति प्राप्त करते हैं।

#### जघन्य समाधि के फल-

आराधयितु धीरा जहण्णमाराहणं चदुक्खबंधं ।

कम्परयविष्पमुक्ता सत्तमजम्मेण सिङ्गांति ॥2156

उक्त चार भेद रूप जघन्य आराधना की आराधना करके धीर पुरुष कर्म रूपी धूलि से छूटकर सातवें भव में मुक्ति प्राप्त करते हैं।

#### बालपंडितमरण-(श्रावक के समाधि-मरण)

देसेक्कदेसविरदो सम्मादिङ्गी मरिज जो जीवो ।

तं होदि बालपंडिदमरणं जिणसासणे दिङ्गं ॥2072

जो समस्त असंयम का त्याग करने में असमर्थ है स्थूल हिंसा, स्थूल झूठ, स्थूल चोरी, स्थूल कुशील और स्थूल परिग्रह आदि पांच पापों का त्याग करता है उसे देशविरत कहते हैं। और जो देशविरति के भी एक देश से विरत होता है अर्थात् अपनी शक्ति के अनुसार हिंसादि का त्याग करता है ऐसा सम्यकदृष्टि एक देश विरत कहा जाता है। इस प्रकार जो समस्त या एकदेश गृहस्थ धर्म का पालन श्रावक होता है उसके मरण जिनागम में बालपंडितमरण कहा है।

आसुक्तारे मरणे अव्वोच्छिण्णाए जीविदासाए ।

णादीहि वा अमुक्तो पच्छिमसल्लेहणमकासी ॥2077

सहसा मरण उपस्थिति होने पर, जीवन की आशा रहने पर, अथवा परिजनों

के द्वारा मुक्त न किये जाने पर अन्तिम सल्लेखना धारण न करके, अपने दोषों को आलोचना पूर्वक शल्य रहित होकर अपने घर में ही संस्तर पर स्थित होकर देशविरत श्रावक के मरण को बालपंडित मरण कहते हैं।

आलोचिदणिस्सल्लो सधरे चेवारुहितु संथारं ।

जदि मरदि देसविरदो तं वुत्तं बालपंडिदयं ॥2078

विधिपूर्वक आलोचना करके, माया मिथ्यात्व और निदान शल्य से मुक्त होकर अपने घर में संस्तरपर आरूढ होकर यदि श्रावक देशविरत मरता है तो उसे बालपंडित मरण कहा है।

जो भत्तपदिण्णाए उवक्कमो वित्थरेण पिण्डिष्टो ।

सो चेव बालपंडिदमरणे णोओ जहाजोग्गो ॥2079

भक्त प्रत्याख्यान जो विधि विस्तार से कही है वही सब विधि बालपंडितमरण में यथायोग्य जानना।

वेमाणिएसु कप्पोवगेसु णियमेण तस्स उववादो ।

णियमा सिङ्गादि उक्कस्सएण वा सत्तमम्मि भवे ॥2080

वह श्रावक मरकर नियम से सौधर्मादि कल्पोपपत्र वैमानिक देवों में उत्पन्न होता है और नियम से अधिक से अधिक सात भवों में मुक्त होता है।



## प्रकरण-11

## क्षपक के अनितम संस्कार

प्रश्न- क्षपक के मृत शरीर को अग्नि-संस्कार करने का विधान क्या आगमोक्त है ?

उत्तर - आगम में क्षपक के मृत शरीर का अग्नि संस्कार करने का विधान नहीं है। भगवती आराधना में विसर्जन करने का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से है। यथा- क्षपक के मृत शरीर को मुनिजन दूर करें।

एवं कालगदस्म दु सरीरमतोबहिज वाहिं वा ।

विजावच्चकरा तं सयं विकिंचंति जदणाए ॥1966 पृ.1774 भ. आ. पुरानी प्रति जो क्षपक लोकांतर को प्राप्त हुआ है अर्थात् मर गया है तब वैयावृत्ति करने वाले मुनि उसका शरीर जो कि नगरादि में अथवा बाहर वसतिका में पड़ा रहता है और उसे आगे कहे हुए प्रयत्न से ले जाते हैं, अभिप्राय यह है कि पूर्वोक्त सन्यास विधि से जो क्षपक सम्यक्त्वादिक चार आराधनाओं की निस्तरण पर्यन्त प्राप्त कर पवित्र हुआ है। वह नगरादि के बीच में अथवा बाहर जब मरण करता है तब वैयावृत्य करने वाले मुनिगण उसके शव को बड़े प्रयत्न से स्वयमेव ले जाते हैं।

## श्रमणों का स्थिति कल्प

समणाणं ठिदिकप्पो वासावासे तदेव उद्बन्धे ।

पडिलिहिदव्वा णिसीहिया सव्वसाधूहि ॥1967

चातुर्मासिक योग के प्रारम्भ काल में तथा ऋतु प्रारम्भ में जहाँ आराधक के शरीर का स्थापन किया है उस स्थान की प्रतिलेखना सर्व साधुओं को नियम से करनी चाहिए अर्थात् उस स्थान का दर्शन करना चाहिए, पिछ्छी से उसको स्वच्छ करना चाहिए, ऐसा यह मुनियों का स्थिति कल्प है।

## निषिधीका लक्षण

एगंता सालोगा णादिविकिङ्गा ण चावि आसणा ।

विथिणा विद्वता णिसीहिया दूरमागाढा ॥1968

निषिधिका एकांत प्रदेश में अन्य जनों को दिखाई न दे ऐसे प्रदेश में हो, प्रकाश सहित होनी चाहिए, वह नगरादि कों से अतिदूर न हो, न अति समीप भी हो, वह दूटी हुई विघ्वंस्त की गई ऐसी न हो वह विस्तीर्ण प्रासुक और दृढ़ होनी चाहिए।

## प्रशस्त निषिधिका तथा दिशा-

अभिसुआ असुसिरा अधसा उज्जोवा बहुसमा य असिणिङ्गा ।

णिजंतुगा फमसमक्तमहरिदा अविला य तहा अणाबाधा ॥1969

जा अवरदक्षिणाए व दक्षिणाए व अथ व अवराए ।

वसधीदो वणिङ्गजदि णिसीहिया सा पसत्थत्ति ॥1970

वह निषिधिका चीटियों से रहित, छिंद्रों से रहित होनी चाहिए, यिसी हुई नहीं होना चाहिए, प्रकाश सहित हो, समान भूमि के स्थान पर हो। निर्जन्तुक बाधा रहित हो, गीली तथा इधर उधर हिलने वाली नहीं हो, वह निषिधिका क्षपक की वसतिका से नैऋत्य दिशा में, दक्षिण दिशा में अथवा पश्चिम दिशा में होनी चाहिए, ऐसी इन दिशाओं में निषिधिका की रचना करना पूर्व आचार्यों ने प्रशस्त माना है।

## उत्तमदिशा से संघ को लाभ-

सव्वसमाधि पढमाए दक्षिणाए दु भत्तंगं सुलभं ।

अवराए सुविहारो होदि य उवधिस्सं लाभो य ॥1971

नैऋत्य दिशा की निषिधिका का सर्व संघके समाधि के लिए कारण हो जाती है, अर्थात् इस दिशा की निषिधिका संघ का हित करने वाली होती है, दक्षिण दिशा की निषिधिका से आहार सुलभता से संघ को मिलता है, पश्चिम दिशा में निषिधिका होने से संघ का सुख विहार होता रहेगा और उनको पुस्तकादिक उपकरणों का लाभ होता रहेगा।

## उत्तर दिशा के अभाव में-

जदि तेसि वाधादो दट्टव्वा पुव्वदक्षिणा होइ ।

अवरुत्तरा य पुव्वा उदीचिपुव्वुत्तरा कमसो ॥1972

यदि नैऋत्य, दक्षिण और पश्चिम दिशा में निषिधिका का बनवाने में कुछ बाधा उपस्थित हो तो आग्रेय दिशा में, वायव्य दिशा में, ईशान दिशा में व उत्तर दिशा में इन दिशाओं में से जिस दिशा में सुविधा हो वहाँ बनवानी चाहिए।

## आयोग्य दिशा का कुफल

एदासु फलं कमसो ताणेज तुमंतुमा य कलहोय ।

भेदो य गिलाणं पिय चरिमा पुण कट्टदे अण्ण ॥1973

परन्तु इन दिशाओं की निषिधिकाओं का फल इस प्रकार क्रम से समझ लेना चाहिए, पूर्व दक्षिण दिशा में संघ में स्वर्द्धा, पश्चिमोत्तर दिशा में कलह होगा, पूर्व दक्षिण दिशा में संघ में पूट पडेगी, उत्तर दिशा में व्याधि उत्पन्न होगी, ईशान दिशा में संघ से परस्पर खींचातानी होगी। पूर्वोक्त दिशा में निषिधिका करने से प्रथमतः मुनि मरण होगा। ऐसा इन दिशाओं का फल है।

## क्षपक के मरण पश्चात् विधि-

जं बेलं कालगतो भिक्षू तं बेलमेव पीहरणं ।

जग्गणबंधणछेदणविधि अवेलाए कादव्वा ॥1974

जिस समय भिक्षु का मरण हुआ हो उसी वेला में उसका प्रेत ले जाना चाहिए  
अबेला में मर जाने पर जागरण, बन्धन अथवा छेदन करना चाहिए।

### जागरण करने योग्य मुनि-

बाले बुझे सीसे तवस्सिभीरुगिलाणए दुहिदे ।

आयरिण य विकिंचिय धीरा जगंति जिदणिहा ॥1975

बालमुनि, वृद्धमुनि, शिक्षकमुनि, तपस्वीमुनि, भययुक्त मुनि, रोगी मुनि, दुःख पीडित मुनि, और आचार्य इनको वर्ज्यकर धीर, निद्रा को जिन्होंने जीता है ऐसे मुनियों को जागरण करना चाहिए।

### मृतशरीर को बंधनादि-

गीदत्था कदकज्जा महाबलपरक्कमा महासन्ता ।

बंधन्ति य छिदंति य करचरणंगुट्टपदेसे ॥1976

जिन्होंने पदार्थ का सत्य रूप जाना है और क्षपक के कृत्य जिन्होंने अनेक बार किये हैं, जिनमें महाबल, पराक्रम और धैर्य है ऐसे मुनि क्षपक के हाथ और पाँव तथा अगृंठा इनका कुछ भाग बाँधते हैं अथवा छेदते हैं।

### बंधनादि न करने से दोष -

जदि वा एसण कीरेज्ज विधी तो तत्थ देवदा कोई ।

आदाय तं कलेवरमुडिज्ज रमिज्ज बाधेज्ज ॥1977

यदि यह विधि न की जाएगी तो उस मृतक शरीर में क्रीडा करने का स्वभाव वाला कोई भूत अथवा पिशाच प्रवेश करेगा। उस प्रेत को लेकर वह उठेगा, भागेगा, क्रीडा करेगा। इस कार्य को देखकर बालमुनि, भीरुमुनि के मन में क्षोभ उत्पन्न होकर ये भागेंगे अथवा मरण होगा। इसलिये हाथ, पाँव, व अगृंठा बाँधना चाहिए अथवा उनके कुछ प्रदेशों का छेदन करना चाहिए।

### तैयावृत्त्य के उपकरणों का कार्य-

उवसयपडिदावण्णं उवसंगहिदं तु तत्थ उवकरणं ।

सागारियं च दुविहं पडिहारियमपडिहारि वा ॥1978

क्षपक की शुश्रूषा करने के लिए जिन उपकरणों का संग्रह किया गया था उनका वर्णन वस्तिका सम्बंधी उपकरण में किया गया है। कुछ उपकरण गृहस्थों से लाये गये थे जैसे औषध, जलपात्र, थाली वैहार। कुछ उपकरण त्यागने योग्य रहते हैं। और कुछ उपकरण त्यागने योग्य नहीं होते हैं। जो त्याज्य नहीं है वे गृहस्थों को वापस दिये जाते हैं। कुछ कपडा वैहार उपकरण त्याज्य रहता है।

### आर्यिकादि के मृत शरीर की विधि-

जदि विक्खादा भत्तपइण्णा अज्ञाव होज कालगदो ।

देउल सागारिति व सिवियाकरणं पि तो होज ॥1979

यदि सर्वजनों को विदित ऐसी किसी आर्यिका ने अथवा क्षुल्क ने सल्लेखन धारण कर मरण किया होगा तो उत्तम पालकी अथवा विमान में उसके शव को स्थापन कर ले जाना चाहिये। सन्यास स्थान का रक्षण करने वाली आर्यिका, गृहस्थ, मठपति, क्षुल्क इनका मरण होने पर शिविका अथवा विमान में इनका शव आरोहण कर गृहस्थ ग्राम के बाहर ले जाते हैं।

### शव को शिविका में स्थापन-

तेण परं संठाविय संथारगदं च तत्थं बंधित्ता ।

उड्हेतरकण्डुं गामं तत्तो सिरं किच्चा ॥1980

शिविका की रचना करने के अनंतर बिछाने के साथ उस शव को बाँधकर शिविका में सुलाना चाहिए। ग्राम के सन्मुख उसका मस्तक करना चाहिए। ग्राम के सन्मुख मस्तक करने का कारण यह है कि कदाचित् वह उठेगा तो उसका मुख ग्राम की तरफ नहीं होगा। और ग्राम की तरफ पैर करके शिविका में स्थापन करने से वह उठने पर ग्राम में प्रवेश करेगा इसीलिये ग्राम की तरफ सिर करने का विधान लिखा है।

### शव यात्रा की क्रिया-

पुव्वाभोगिय मगणेण आसु गच्छति तं समादाय ।

अट्ठिदमणियतंता ए पिङ्डदो ते अणिभंता ॥1981

पूर्व के देखे हुए मार्ग से वह शव शीघ्र लेकर जाना चाहिए। रास्ते में नहीं खड़ा होना चाहिए, न पीछे लौटकर देखना चाहिए।

### शव के आगे लाने वालों की क्रिया-

कुसुमुडि घेत्तूण य पुरदां एगेण होइ गंतव्यं ।

अट्ठिदमणियतं तेण पिङ्डदो लोयणं मुच्चा ॥1982

उस शव के आगे एक मनुष्य मुड़ि में कुश-दर्भ लेकर जावे, वह पीछे न देखे, न मार्ग में ठहरे।

### संस्तर का स्वरूप-

तेण कुसुमुडिधाराए अव्वोच्छिण्णाए समणिपादाए ।

संथारो कादव्वो सव्वत्थ समो सग्मि तत्थ ॥1983

जिसने निषिधिका का स्थान पूर्व में देखा है वह मनुष्य वहाँ जाकर दर्भ मुष्टि की समान धारा से सर्वत्र सम संस्तर करना चाहिए।

### मंत्र के लिए ऐसा-

जात्यण होज तणाइ चुणेहि वितत्थ केसरैहि वा ।  
संधरिदव्वा लेहा सब्बत्थ समा अबोच्छणा ॥1984

यदि दर्प तृण नहीं मिला तो प्रासुक तंडुल, मसूर की दाल इत्यादिकों के चूर्ण से कमल केशर वगैरह से मस्तक से लेकर पाँव तक समान, नहीं दूटी हुई रेखाएँ लिखनी चाहिए।

### विषम संस्तर से कु शकुन-

जदि विसमो संथारो उवरि मज्जो व होज हेडो वा ।

मरणं व गिलाणं वा गणिवसभजदीण णायव्वं ॥1985

ऊपर, मध्य में अथवा नीचे रेखाओं में यदि विषमता होगी तो वह अनिष्ट सूचक है, ऊपर की रेखायें विषम होंगी तो गणी अर्थात् आचार्य का मरण अथवा व्याधि सूचित होती है मध्य की रेखा विषम होने पर ऐलाचार्य मरण अथवा व्याधि सूचित होती है। और नीचे की रेखा विषम होने पर सामान्य यति का मरण अथवा व्याधि की सूचना मिलती है।

### ग्राम की ओर शब्द का स्थिर-

जत्तोदिसाए गामो तत्तो सीसं करितु सोवधियं ।

उड्डेतरक्खणद्व वोसरिदव्वं सरीरं तं ॥1986

जिस दिशा में ग्राम होगा उस दिशा में मस्तक कर पिच्छी के साथ उस शब्द को उस स्थान पर रखना चाहिए। ग्राम के सम्मुख मस्तक करने का अभिप्राय पूर्व में लिख चुके हैं।

### निषिधिका में पिच्छी का स्थापन का कारण-

जो वि विराधिय दंसणमंते कालं करितु होज सुरो ।

सो वि विबुज्जदि दद्वृण सदेहं सोवधिं सज्जो ॥1987

जिसने सम्यग्दर्शन की विराधना से मरण कर देव पर्यार्य पाई है वह भी पिच्छी के साथ अपना देह पूर्व भव में मुनि था ऐसा जान सकेगा।

### विभिन्न नक्षत्र में समाधि के विभिन्न फल-

णता भाए रिक्खे जदि कालगदो सिवं तु सव्वेसि ।

एको दु समे खेते दिवटेखेते मंरति दुवे ॥1988

सदभिसभरण अद्वा सादा असलेस्स जिङ्ग अवखरा ।

रोहिणविसाह पुणव्वसु तित्तरा मज्जिमा सेसा ॥1989

अल्प नक्षत्र में यदि क्षपक का मरण होगा तो वह सबको सुख दायक होगा, मध्य नक्षत्र

में मरण होने से एक मुनि का मरण होगा। महा नक्षत्र पर मरण होने से दो मुनियों का मरण होता है।

जो नक्षत्र पन्द्रर मुहूर्त के रहते हैं उनको जघन्य मुहूर्त कहते हैं। शतभिषक, भरणी, आर्द्रा, स्वाति, आश्लेषा ज्येष्ठा इन छ नक्षत्रों में से किसी एक नक्षत्र पर अथवा उसके अंश पर यदि क्षपक का मरण होगा तो सर्व संघ का क्षेम होता है। तीस मुहूर्त के नक्षत्रों को मध्यम नक्षत्र कहते हैं। अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्य, मधा, पूर्वाफाल्युनी, हस्त, चित्रा, अनुराधा, पूर्वा, पूर्वाषाढा, श्रवण, धनिष्ठा पूर्वभाद्रापदा और रेवती इन पंद्रह नक्षत्रों अथवा उसके अंशों पर क्षपक का मरण होने से एक मुनि का मरण होता है। उत्कृष्ट पैतालीस मुहूर्त के नक्षत्रों को उत्कृष्ट नक्षत्र कहते हैं। उत्तर फाल्युनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, पुनर्वसु, रोहिणी, विशाखा, छः मुहूर्त में से किसी मुहूर्त पर अथवा उसके अंश पर क्षपक का मरण होने से और दो मुनियों का मरण होता है।

### गणरक्षार्थे क्रिया-

गणरक्खत्थं तह्वा तणमयपडिबिबयं खु कादूण ।

एकं तु समे खेते दिवटेखेते दुवे देज ॥1990

गण के रक्षण हेतु मध्यम नक्षत्र में तृण का एक प्रतिबिंब बना कर रखना चाहिए तथा उत्तम नक्षत्र पर दो तृण के प्रतिबिंब बना करके अर्पण करना चाहिए।

### प्रतिबिम्ब की स्थापना

तट्टाणसावयं चियं तिक्खुत्तो ठाविय मडयपासम्मि ।

विदियवियप्पिय भिक्खु कुज्जा तह विदिय तदियाण ॥1991

मृतक के पास प्रतिबिंब स्थापना कर उसे मुनि के स्थान में मैंने यह दूसरा अर्पण किया है यह चिरकाल यहाँ रहे अथवा तप करे ऐसा जोर से तीन बार उच्चारण करना चाहिए। एक का अर्पण करने में यह क्रम कहा है। मृतक के पास दो तृण प्रतिबिंब स्थापना करके दोनों के स्थान में मैंने ये दो अर्पण किये हैं। ये यहाँ चिरकाल रहे अथवा तप करे ऐसा जोर से तीन बार बोलना चाहिए।

### तृष्णाभावे काय शब्द लेखन

असदि तणे चुणेहि च केसरच्छारिद्वियादि चुणेहि ।

कादब्बोथ ककारो उवरि हिंदा यकारो से ॥1992

प्रतिबिंब करने के लिए तृण नहीं होगा तो तंडुल चूर्ण, पुष्य केसर अथवा ईटों का चूर्ण इसमें से जो कुछ प्राप्त हो उससे ऊपर ककार और उसके नीचे यकार लिखना चाहिए। अर्थात् 'काय' ऐसा शब्द लिखना चाहिए। संघ शान्ति के लिए ऐसा कार्य करना (क्षपक की स्थापना करने के पूर्व में प्रासुक धान्य चूर्णादि से 'क' लिखकर उसके

ऊपर क्षपक को स्थापन चाहिए। ककार के नीचे यकार भी लिखना चाहिए अहंत की पूजा वगैरह से भी शांति करते हैं ऐसा मूलाराधना में उल्लेख है।

### गृहस्थों के उपकरणों को लौटाना-

उवगहिदं उवकरणं हवेजं तथं पाडिहरियं तु।  
पडिबोधित्ता सम्मं अप्पेदब्वं तयं तेसि॥1993

मृतक को निषिधिका के पास ले जाने के समय जो कुछ वस्त्र काष्ठादिक उपकरण गृहस्थों से याचना करके लाया गया था उसमें जो कुछ लौटा कर देने योग्य होगा वह गृहस्थों को समझाकर लौटा देना चाहिए।

### कायोत्सर्ग एवं इच्छाकार-

आराधणपत्तीयं काउसर्गं करेदि तो संघो।

अधिउत्ताए इच्छागारं खबयस्स वसधीए॥1994

चार आराधनाओं की प्राप्ति हम को हो ऐसी इच्छा से संघ को एक कायोत्सर्ग करना चाहिए। क्षपक के वसतिका की जो अधिष्ठान देवता होगी उसके प्रति यहाँ संघ बैठना चाहता है ऐसी इच्छाकार करनी चाहिए।

### समाधि के दिन स्वगण-परगण की वर्या

संगणत्थे कालगदे खमणमसङ्गाइयं च तद्विवसं।

सज्जाइ परगणत्थे भयणिजं खमणकरणंपि॥1995

अपने गण का मुनि मरण को प्राप्त होने पर उपवास करना चाहिए। उस दिन स्वाध्याय नहीं करना चाहिये। परगण के मुनि की मृत्यु होने पर स्वाध्याय नहीं करना चाहिए। उपवास करना विकल्प है। अर्थात् उपवास करे अथवा न करे।

### निषिधिका में तीसरे दिन की क्रिया-

एवं पदिङ्गवित्ता पुणो वि तदिय दिवसे उवेक्खंति।

संघस्स सुहविहारं तस्स गदी चेव णादुंजे॥1996

उपर्युक्त क्रम से क्षपक के शरीर की स्थापना कर पुनः तीसरे दिन वहाँ जाकर देखते हैं। अर्थात् संघ का सुख से विहार होगा या नहीं और उसकी कौन सी गति हुई है इसका परिज्ञान करने के लिए तीसरे दिन फिर वहाँ मुनि जाते हैं।

### मृत शरीर से शुभ शकुन

जदिदिवसे संचिङ्गहि तमणालद्वं च अक्खंदं मडयं।

तदिवरिसाणि सुभिक्खं खेमसिवं तम्हि रज्जम्मि॥1997

जितने दिन तक वृकादिक पशुपक्षियों के द्वारा क्षपक शरीर स्पर्शित नहीं होगा और अक्षत रहेगा उतने वर्ष तक राज्य में क्षेम रहेगा ऐसा समझना चाहिए।

### शव से दिशा का शुभ शकुन-

जं वा जिसमुवणीदं सरीरयं खगचतुष्पदगणेहि।

खेमं सिवं सुभिक्खं विहरिज्जोतं दिसं संघो॥1998

पक्षी अथवा चतुष्पद प्राणी जिस दिशा में उस क्षपक का शरीर ले गये होंगे उस दिशा में संघ विहार करे उस दिशा की तरफ क्षेमादि समझना चाहिए।

### शव से क्षपक की गति का ज्ञान

जदि तस्स उत्तमंगं दिस्सदि दंता च उवरिगिरिसिहरे।

कम्पमलविष्पमुक्तो सिद्धिं पत्तोति णादव्यो॥1999

क्षपक का मस्तक अथवा दंतपंक्ति पर्वत के शिखर पर दिखाई पड़े तो यह क्षपक कर्म मल से अलग होकर मुक्त हो गया है ऐसा समझना चाहिए। जयनंदि की टिप्पणी के अनुसार सिद्धि का अर्थ सर्वार्थसिद्धि है।

वैमाणिओ थल गदो समम्मि जो दिसि य वाणविंतरओ।

गद्वाए भवणवासी एस गदी से समासेण॥2000

क्षपक का मस्तक उच्च स्थल में दिखाई देता है तो वह वैमानिक हुआ है ऐसा समझना चाहिए। समभूमि में यदि दिखेगा तो ज्योतिष्क अथवा व्यंतर हुआ है ऐसा समझना चाहिए। गड्ढे में यदि दिखेगा तो भवनवासी हुआ है ऐसा मानना चाहिए। इस प्रकार क्षपक की गति का संक्षेप में वर्णन किया है।

उपर्युक्त सविस्तार विधिप्रक आगम प्रमाण से सिद्ध हो जाता है कि क्षपक का अन्तिम संस्कार अग्नि से नहीं किया जाता है। इतना ही नहीं, मृत शरीर को अन्य मुनि जन ही स्वयं ले जाकर निषिधिका की भूमि में विसर्जन करते हैं। अतिंम संस्कार की प्रायः सब क्रियायें मुनिजनों के द्वारा होने के कारण वे अग्नि जलनादि क्रियायें भी कैसे कर सकते हैं? यदि शव को जला दिया जाता है तब गा. न. 1996 से 2000 तक जो शकुन सम्बन्धी वर्णन है वह कैसे घटित हो सकता है क्या जला हुआ शरीर तीन-दिन तक अक्षत रह सकता है? उस भस्मीभूत शरीर को क्या पशु ले जा सकते हैं? क्षपक का मस्तक या दंतपंक्ति पर्वत के शिखर कर पशु ले जा सकती है? यदि तर्क दिया जाये कि शरीर को आग के ऊपर रखने के बाद भी साबुत रह गया तब लकड़ी आदि इकड़ा करने की क्या आवश्यकता थी? अग्नि जलाने की क्या आवश्यकता थी? यह सब आरंभ, समारंभ, कृत, कारित, अनुमोदित करने के बाद भी यदि शरीर जैसा तैसा साबुत रह गया तो विना यह आरभादि किये शव को साबुत ही छोड़ देना अति उत्तम होता है। वर्तमान काल में केवल अग्नि-संस्कार से ही कार्य सम्पन्न नहीं होता है क्षपक ने तो धर्म के लिए शरीर तक त्याग कर दिया परन्तु दूसरे लोग तो उस शरीर से धन कमाने के लिए बोली कराते हैं। उस बोली की जुगाड़ के लिये दूर-दूर सूचना दी जाती है। दूर-दूर से सेठ-साहूकार आने पर बोली का नाटक घंटों भर चलता है। बोली के निमित्त दूर-दूर से धनात्मा को बुलान में एवं धन के बल पर (बोली) धर्म के क्रय-विक्रय में कभी-

कभी धंटों या एकाध दिन की देरी हो जाती है। तब तक मृतशरीर में कितने एकेन्द्रिय से लेकर समूच्छन पंचेन्द्रिय तक जीव जन्म लेते हैं, यह तो सर्वज्ञ भगवान् ही साक्षात् देख सकते हैं। हम तो आगम के आधार पर ही जान सकते हैं कि अन्तमुहूर्त के बाद समूच्छन जीव पैदा होना प्रारम्भ हो जाते हैं। पहले तो एकेन्द्रिय समूच्छन जीव उत्पन्न होंगे फिर समय बढ़ने से दो, तीन, चार, पाँच इन्द्रिय सम्बन्धी समूच्छन जीव उत्पन्न होंगे। शायद उस शरीर में संख्यात, असंख्यात से लेकर अनन्त जीव उत्पन्न हो जायेंगे। इतना ही नहीं यदि शीघ्र (अन्तमुहूर्त के मध्य में भी उस शब्द को जलाया जायेगा तो उसमें भी जो अनन्त त्रस-स्थावर जीव हैं उनका धात होगा। गृहस्थ के शब्द संस्कार में भी देरी होने से गृहस्थ प्रायश्चित का भागी होता है। यथा-

तिथिवाररक्षयोगेषु दुष्टेषु मरणं यदि ॥

मृतस्यैथापनं चैव दीर्घकालादभूद्यादि ॥150 त्रैवर्णकाचारं तदोषपरिहारार्थं कर्ता कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥

प्रांजलिः प्रार्थ्य गृण्हीयात्प्रायश्चितं विपश्चितः ॥151

यथाशक्ति जिनेज्या च महायन्त्रस्य पूजनम् ॥

शान्तिहोमयुतो जाप्यो महामत्रस्य तस्य वै ॥152

आहारस्य प्रदानं च धार्मिकाणां शतस्य वा ।

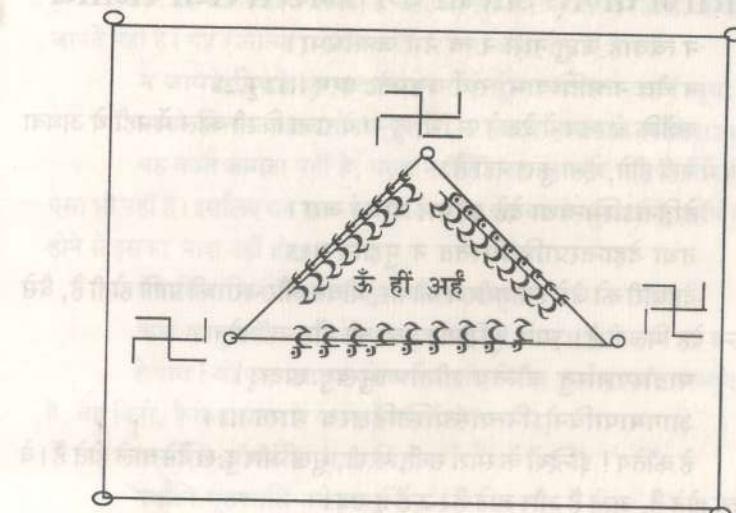
तदर्थस्याथवा पंचविंशते प्रतिधीयते ॥153

तीर्थस्थानानि वन्द्यानि नव वा सप्त पंच वा ।

दुष्टिथ्यादिमरणे प्रायश्चित्तमिदं भवेत् ॥154

दुष्ट तिथि, वार, नक्षत्र, और योग में यदि किसी का मरण हो जाये और मृतक पुरुष को मरण के बाद बहुत देर से जलाने के लिए ले जाये तो उस दोष के परिहार के लिए कर्ता हाथ जोड़ प्रदक्षिणा देकर विद्वानों से प्रार्थना करे और प्रायश्चित्त करे, यथा शक्ति जिनभगवान् की पूजा करे, महा मंत्र की पूजा करे, शान्ति विधान एवं होम करे, महामंत्र का जाप करे सौ पचास किंवा पच्चीस धर्मात्माओं को आहार दान दे। नौ सात या पाँच तीर्थों की वंदना करें। यह दुष्ट तिथि आदि में मरने का प्रायश्चित्त है। ऐसी परिस्थिति में वर्तमान में जो क्षपक के शरीर की अग्नि-संस्कार क्रिया होती है, उससे करने वालों को कितना बड़ा प्रायश्चित्त लेना पड़ेगा। यह विचारणीय है। जो साधु को जीवितावस्था में पानी तक नहीं पिलाने वाले भी कुछ लोग नाम कमाने के लिए बढ़कर बोली लेंगे। साधु अवस्था में वसतिका की व्यवस्था नहीं करने वाले उनके नाम पर स्वनाम कमाने के लिए छतरी संस्था बनायेंगे। यह क्रिया तो जिन्दा बाप से लड्डम लड्डा मरे हुए को पहुँचावे गंगा' के समान है या जिन्दा साप को मारना तथा साप की मूर्ति को दूध पिलाने के समान है। कहावत है “घर आये नाग ना पूजे बाबरू पूजन जावे’ के समान है।

## साधु की समाधि के अनन्तर अन्तिम संस्कार विधि का चित्र



जमीन समतल करें- ऊंची-नीची नहीं हो। कम से कम 13X13 फुट चौकोर जमीन हो। छिप न हों। 7X7 फुट पर चारों कोने में चार लकड़ी की खूंटियां लगाएं। बिना दुंटी सीधी रेखा से उपरोक्त चित्रानुसार चौकोर क्षेत्र बनाएं। हल्दी - कुंकुं या रोली से बनाएं। खूंटी के सहारे चारों ओर पंचरंगी धागे से बांधें। चौकोर के ठीक मध्य में एक त्रिकोण बनावें। यह त्रिकोण बैठे पद्मासन शब्द के मस्तक के मध्यभाग से आसन तक सीधा नाप लेकर उस नाप की एक सूतली से सीधी रेखा से त्रिकोण बनावें। हल्दी-कुंकुं या रोली से बनावें। त्रिकोण के तीनों कोनों पर तीन उल्टे स्वस्तिक बनावें, तीन खूंटियां गाढ़े और उनके सहारे पंचरंगी धागा बेष्ठित करें। उसी त्रिकोण पर उपर लिखे अनुसार पांच, सात या नो 'ई' लिखें। मध्य में 'ऊँ हीं अहं' लिखें। इसी त्रिकोण के अनुसार अंतिम संस्कार के लिए क्षपक के मृत शरीर रखें। त्रिकोण में मसूर का आटा धरें। 'ई' और बीच का मंत्र कुंकुं से लिखें। स्वस्तिक हल्दी से बनावें।



## प्रकरण - 12

## गीता में वर्णित आत्मा की अमरता तथा समाधि

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपा ।

न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥12पृ.28

क्योंकि वास्तव में देखने पर, मैं, तू या ये राजा किसी काल में नहीं थे अथवा भविष्य में नहीं होंगे, ऐसा कुछ नहीं है ।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।

तथा देहान्तरप्राप्तिर्धर्स्तव न मुहाति ॥13

देहधारी को जैसे इस शरीर में कौमार, यौवन और जरा की प्राप्ति होती है, वैसे ही अन्य देह मिलती है । उसमें बुद्धिमान पुरुष को मोह नहीं होता ।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।

आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तिक्ष्व भारत ॥14

हे कौन्तेय ! इन्द्रियों के स्पर्श सर्दी, गरमी, सुख और दुःख देने वाले होते हैं । वे अनित्य होते हैं, आते हैं और जाते हैं । उन्हें तू सह ।

यं हि न व्यथयन्नयेते पुरुषर्षभ ।

समदुःखसुखं धीरं सोऽमृत्वाय कल्पते ॥15

हे पुरुष श्रेष्ठ सुख-दुःख में सम रहने वाले जिस बुद्धिमान पुरुष को ये विषय व्याकुल नहीं करते, वह मोक्ष के योग्य बनता है ।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।

उभ्योरपि दृष्टोऽनतस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥16

असत् का अस्तित्व नहीं है और सत् का नाश नहीं है इन दोनों का निर्णय ज्ञानियों ने जाना है ।

अविनाशि तु जद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।

विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥17

जिससे यह अखिल जगत् व्याप्त है, उसे तू अविनाशी जान । इस अव्यय का नाश करने में कोई समर्थ नहीं है ।

अन्तवन्त मे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।

अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥18

नित्य रहने वाले, अपरिमित अविनाशी देही की ये देहें नाशवान कही गई हैं; इसलिए, हे भारत ! तू युद्ध कर ।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।

उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥19

जो इसे मारनेवाला मानता है और जो इसे मारा हुआ मानता है, वे दोनों कुछ जानते नहीं हैं । यह (आत्मा) न मारता है, न मारा जाता है ।

न जायते प्रियते वा कदाचिन्-नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥20

यह कभी जन्मता नहीं है, मरता नहीं है । यह था और भविष्य में नहीं होगा, ऐसा भी नहीं है । इसलिए यह अजन्मा है, नित्य है, शास्वत है, पुरातन है, शरीर का नाश होने से इसका नाश नहीं होता ।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।

कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयाति हन्ति कम् ॥21

हे पार्थ ! जो पुरुष आत्मा को अविनाशी, नित्य, अजन्मा और अव्यय मानता है, वह किसे, कैसे मरवाता है या किसे मारता है?

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय

नवानि गृहणाति नरोऽपराणि ।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-

न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥22

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़कर नए धारण करता है, वैसे देहधारी जीर्ण हुई देह को त्यागकर दूसरी नई देह पाता है ।

नैनं छिन्दन्तिशयस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥23

इस (आत्मा) को शस्त्र छेदते नहीं, आग जलाती नहीं, पानी भिगोता नहीं, वायु सुखाती नहीं ।

अच्छद्योऽयमदाहोऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।

नित्यः सर्वगतः स्थापुरचलोऽयं सनातनः ॥24

यह ड्लेदा नहीं जा सकता है, जलाया नहीं जा सकता है, न भिगोया जा सकता है, न सुखाया जा सकता है । यह नित्य है, सर्वगत है, स्थिर है, अचल और सनातन है ।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्चते ।

तस्मा देवं विदित्वैनं नानुशोचितुर्महसि ॥25

फिर, यह इन्द्रिय और मन के लिए अगम्य है, विकार रहित कहा गया है, इसलिए इसे वैसा जानकर तुझे शोक करना उचित नहीं है ।

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।  
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ॥१२६॥

अथवा जो तू इसे नित्य जन्मने और मरने वाला माने तो भी, हे महाबाहो ! तुझे शोक करना उचित नहीं है ।

जातस्य हि ध्रवो मृत्युधृत्वं जन्म मृतस्य च ।  
तस्मादपरिहार्येऽर्थं न त्वं शोचितुमर्हसि ॥१२७॥

जन्मे हुए के लिए मृत्यु और मरे हुए के लिए जन्म अनिवार्य है । अतः जो अनिवार्य है, उसका शोक करना उचित नहीं है ।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।  
अव्यक्तनिधानान्येव तत्र का परिवेदना ॥१२८॥

हे भारत ! भूत मात्र की जन्म के पहले की और मृत्यु के पीछे की अवस्था देखी नहीं जा सकती, वह अव्यक्त है, बीच की ही स्थिति व्यक्ति होती है । इसमें चिंता का क्या कारण है ?

आशर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-  
माशर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।

आशर्यवच्चैनमन्यः श्रृणोति  
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥१२९॥

कोई इसे आशर्य समान देखता है और कोई इसे आशर्य- समान वर्णन करता है और कोई इसे आशर्य समान वर्णन कियाहुआ सुनता है, परन्तु सुनने पर भी कोई इसे जानता नहीं है ।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।  
तस्मात्सर्वाणि भूतानिन् त्वं शोचितुमर्हसि ॥१३०॥

हे भारत ! सबकी देह में विद्यमान यह देह धारी आत्मा नित्य अवध्य है, इसलिए भूत मात्र के विषय में तुझे शोक करना उचित नहीं है ।

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।

स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत् किम् ॥१५४॥३६

हे केशव ! स्थितप्रज्ञ अथवा समाधिस्थ के क्या लक्षण होते हैं? स्थितप्रज्ञ कैसे बोलता, बैठता और चलता है?

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थं मनोगतान् ।  
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थित प्रज्ञस्तदोच्यते ॥१५५॥

हे पार्थ ! जब मनुष्य मन में उठती हुई समस्त कामनाओं का त्याग करता है

और आत्मा द्वारा ही आत्मा में संतुष्ट रहता है तब वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है ।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।  
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिस्त्रच्यते ॥१५६॥

दुःख से जो दुःखी न हो, सुख की इच्छा न रखे और जो राग, भय और क्रोध से रहित हो वह स्थिरबुद्धि मुनि कहलाता है ।

यः सर्वव्रानभिस्नेहस्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।  
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥१५७॥

सर्वत्र राग रहित होकर जो पुरुष शुभ या अशुभ की प्राप्ति में न हर्षित होता है, न शोक करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है ।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।  
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥१५८॥

कहुआ जैसे सब ओर से अंग समेट लेता है वैसे जब यह पुरुष इन्द्रियों को उनके विषय में से समेट लेता है तब उसकी बुद्धि स्थिर हुई कही जाती है ।

विषया विनिवर्तने निराहारस्य देहिनः ।  
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥१५९॥

देहधारी निराहारी रहता है तब उसके विषय मंद पड़ जाते हैं । परन्तु रस नहीं जाता । वह रस तो ईश्वर का साक्षात्कार होने से निवृत्त होता है ।

यततो हापि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।  
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसर्भं मनः ॥१६०॥

हे कौन्तेय ! चतुर पुरुष के उद्योग करते रहने पर भी इन्द्रियाँ ऐसी प्रयत्नशील हैं कि उसके मन को भी बलात्कार से हर लेती हैं ।

तानि सर्वाणि संयस्य युक्त आसीत मत्परः ।  
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥१६१॥

इन सब इन्द्रियों को वश में रखकर योगी को मुझे में तन्मय हो रहा चाहिए, क्योंकि, अपनी इन्द्रियाँ जिसके वश में हैं उसकी बुद्धि स्थिर है ।

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।  
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥१६२॥

विषयों का चिंतन करने वाले पुरुष को उनमें आसक्ति उत्पन्न होती है, आसक्ति में से कामना होती है और कामना में से क्रोध उत्पन्न होता है ।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्मृतिविभ्रमः ।  
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥१६३॥

क्रोध में से मूढ़ता उत्पन्न होती है, मूढ़ता से स्मृति भ्रांत हो जाती है, स्मृति भ्रान्त होने से ज्ञान का नाश हो जाता है और जिसका ज्ञान नष्ट हो गया वह मृतक तुल्य है।

रागद्वेषवियुक्तस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।

आत्मवश्यैर्विर्यात्मा प्रसादमथिगच्छति ॥64

परन्तु जिसका मन अपने अधिकार में है और जिसकी इन्द्रियां राग-द्वेष रहित होकर उसके वश में रहती हैं, वह मनुष्य इन्द्रियों का व्यापार चलाते हुए भी चित्त की प्रसन्नता प्राप्त करता है।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।

प्रसन्नत्येतसो हाशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥65

चित्त की प्रसन्नता से उसके सब दुःख दूर हो जाते हैं और प्रसन्नता प्राप्त हो जाने वाले की बुद्धि तुरंत ही स्थिर हो जाती है।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।

न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥66

जिसे समत्व नहीं, उसे विवेक नहीं, उसे भक्ति नहीं और जिसे भक्ति नहीं उसे शांति नहीं है और जहाँ शांति नहीं, वहाँ सुख कहाँ से हो सकता है?

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते ।

तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नाविमिवाम्भसि ॥67

विषयों में भटकने वाली इन्द्रियों के पीछे जिसका मन दौड़ता है उसका मन वायु जैसे नौका को जल से खींच ले जाता है वैसे ही उसकी बुद्धि को जहाँ चाहे खींचे ले जाता है

तस्माद्यस्य महाबाहोनिगृहीतानि सर्वशः ।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥68

इसलिए, हे महाबाहो ! जिसकी इन्द्रियां चारों ओर के विषयों से निकलकर उसके वश में आ जाती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।

या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥69

जब सब प्राणी सोते रहते हैं तब संयमी जागता रहता है। जब लोग जागते रहते हैं तब ज्ञानवान मुनि सोता रहता है।

आदि शंकराचार्य की टट्टि से आत्मा की अमरता तथा समाधि-  
ततो विकारा प्रकृतेरहंसुखा

देहावसाना विषयाश्च सर्वे ।

क्षणेऽन्यथाभावितया हामीषा-

मसात्त्वमात्मा तु कदापि नान्यथा ॥351 विवेक चू. पृ.115

इसलिये अहंकार से लेकर देहतक प्रकृति के जितने विकार अथवा विषय हैं वे सभी क्षण-क्षण में बदले वाले होने से असत्य हैं, आत्मा तो कभी नहीं बदलता, वह तो सदा ही एकरस रहता है।

नित्याद्वयाखण्डचिदेकरूपे

बुद्ध्यादिसाक्षी सदसद्विलक्षणः ।

अहंपदप्रयत्यलक्षितार्थः

प्रत्यक्षसदानन्दधनः परात्मा ॥352

जो 'अहं' पद की प्रतीति से लक्षित होता है वह नित्य आनन्दधन परमात्मा तो सदा ही अद्वितीय, अखण्ड, चैतन्यस्वरूप, बुद्धि आदि का साक्षी, सत्-असत् से भिन्न और प्रत्यक्ष (अनन्तरतम) है।

इत्थं विपश्चित्सदसद्विभज्य

निश्चित्य तत्त्वं निजबोधदृष्ट ।

ज्ञात्वा स्वमात्मानमखण्डबोधं

तेभ्यो विमुक्तःस्वयमेव शाम्यति ॥353

विद्वान् पुरुष इस प्रकार सत् और असत् का विभाग करके अपनी ज्ञान-दृष्टि से तत्त्व का निश्चय करके और अखण्ड बोध-स्वरूप आत्मा को जानकर असत्पदार्थों से मुक्त हाकर स्वयं ही शान्त हो जाता है।

अज्ञानहृदय ग्रन्थेर्निःशेषविलयस्तदा ।

समाधिनाविकल्पेन यदाद्वैतात्मदर्शनम् ॥354

अज्ञान रूप हृदय की ग्रन्थि का सर्वथा नाश तो तभी होता है जब निर्विकल्प समाधि द्वारा अद्वेत आत्मस्वरूप का साक्षात्कार कर लिया जाता है।

त्वमहमिदमितीयं कल्पना बुद्धिदोषात् ।

प्रभवति परमात्मन्यद्वये निर्विशेषे ।

प्रविलसति समाधावस्य सर्वो विकल्पो

बिलयनमुपगच्छेद्वस्तुक्तवावध्यन्त्या ॥355

अद्वितीय और निर्विशेष परमात्मा में बुद्धि के दोष से 'तू, मैं, यह'- ऐसी कल्पना होती है और वही सम्पूर्ण विकल्प समाधि में विघ्नरूप से स्फुरित होता है; किन्तु तत्त्व-वस्तु का यथावत् ग्रहण होने से वह सब लीन हो जाता है।

शान्तो दान्तः परमुपरतः क्षान्तियुक्तः समाधि-

कुर्वन्त्रित्यं कलयति यतिः स्वस्य सर्वात्मभावम् ।

तेनाविद्यातिमिरजनितान्साधु दग्धवा विकल्पान्

ब्रह्माकृत्या निवसति सुखं निष्क्रियो निर्विकल्पः ॥1356

योगी पुरुष चित्त की शान्ति, इन्द्रियनिग्रह, विषयों से उपरति और क्षमा से युक्त होकर समाधि का निरन्तर अभ्यास करता हुआ अपने सर्वात्मभाव का अनुभव करता है और उसके द्वारा अविद्या रूप अन्धकार से उत्पन्न हुए समस्त विकल्पों का भलीभाँति ध्वंस करके निष्क्रिय और निर्विकल्प होकर आनन्दपूर्वक ब्रह्माकार - वृत्तिसे रहता है।

समाहिता ये प्रविलाप्य बाहां श्रोत्रादि चेतः स्वमहं चिदात्मनि ।

त एव मुक्ता भवपाशबन्धे- नन्ये तु पारोक्ष्यकथामिधायिनः ॥1357

जो लोग श्रोत्रादि इन्द्रियवर्ग तथा चित्त और अहंकार इन बाहा वस्तुओंको आत्मा में लीन करके समाधि में स्थित होते हैं वे ही संसार बन्धन से मुक्त हैं, जो केवल परोक्ष ब्रह्मज्ञान की बारें बनाते रहते हैं वे कभी मुक्त नहीं हो सकते ।

उपाधिभेदात्स्वयमेव भिद्यते चोपाध्यपोहे स्वयमेव केवलः ।

तस्मादुपाधेविर्लियाय विद्वा- वसेत्सदाकल्पसमाधिनिष्ठया ॥ 358

उपाधिके भेद से ही आत्मा में भेद की प्रतीति होती है और उपाधि का लय हो जानेपर वह केवल स्वयं ही रह जाता है, इसलिये उपाधि का लय करने के लिये विचारवान् पुरुष सदा निर्विकल्प-समाधि में स्थित होकर रहे ।

अतीव सूक्ष्मं परमात्मतत्त्वं

न स्थूलदृष्ट्या प्रतिपत्तुमर्हति ।

समाधिनात्यन्तसुसूक्ष्मवृत्त्या

ज्ञातव्यमार्दरतिशुद्धबुद्धिभिः ॥1361

परमात्म- तत्त्व अत्यन्त सूक्ष्लम है, उसे स्थूल दृष्टि से कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता, इसलिये अति शुद्धबुद्धि वाले सत्पुरुषों को उसे समाधि द्वारा अति सूक्ष्मवृत्ति से जानना चाहिये ।

यथा सुवर्णं पुटपाकशोथितं त्यक्त्वा मलं स्वात्मगुणं समृच्छति ।

तथा मनः सत्त्वरजस्तमोमलं ध्यानेन सन्त्यज्य समेति तत्त्वम् ॥1362

जिस प्रकार (अग्नि में)पुटपाक-विधि से शोधा हुआ सोना सम्पूर्ण मल को त्याग कर अपने स्वाभाविक स्वारूप को प्राप्त कर लेना है उसी प्रकार मन ध्यान के द्वारा सत्त्व-रज-तमरूप मलको त्याग कर आत्मतत्त्व को प्राप्त कर लेता है।

निरन्तराभ्यासवशात्तदित्यं पक्षं मनो ब्रह्माणि लीयते यदा ।

तदा समाधिः स विकल्पवर्जितः स्वतोऽद्वयानन्दरसानुभावकः ॥ 363

जिस समय रात-दिन के निरन्तर अभ्यास से परिपक्ष होकर मन ब्रह्म में लीन हो जाता है उस समय अद्वितीय ब्रह्मानन्द रस का अनुभव कराने वाली वह निर्विकल्प समाधि स्वयं ही सिद्ध हो जाती है।

समाधिनानेन समस्तवासना- ग्रन्थेर्विनाशोऽखिलकर्मनाशः ।

अन्तर्बहिः सर्वत एव सर्वदा स्वरूप विस्फूर्तिरथतः स्यात् ॥1364

इस निर्विकल्प समाधि से समस्त वासना-ग्रन्थियों का नाश हो जाता है तथा वासनाओं के नाश से सम्पूर्ण कर्मों का भी नाश हो जाता है और फिर बाहर-भीतर सर्वत्र बिना प्रयत्न के ही निरन्तर स्वरूप की स्फूर्ति होने लगती है।

श्रुतेः शतगुणं विद्यान्मननं मननादपि ।

निदिध्यासं लक्षणुमनन्तं निर्विकल्पकम् ॥1365

वेदान्त के श्रवण मात्र से उसका मनन करना सौगुना अच्छा है और मनन से भी लाखगुना श्रेयस्कर निदिध्यासन (आत्मभावना- को अपने चित्त में स्थिर करना) है। तथा निदिध्यासन से भी अनन्तगुना निर्विकल्प-समाधि महत्त्व है। (जिससे चित्त फिर आत्मस्वरूप से कभी चलायमान ही नहीं होता ।

निर्विकल्पकसमाधिना स्फुटं ब्रह्मतत्त्वमवगम्यते ध्रुवम् ।

नान्यथा चलतया मनोगतेः प्रत्यान्तरविमिश्रितं भवेत् ॥1366

निर्विकल्प समाधि के द्वारा निश्चय ही ब्रह्मतत्त्व का स्पष्ट ज्ञान होता है; और किसी प्रकार वैसा बोध नहीं हो सकता, क्योंकि अन्य अवस्थाओं में चित्तवृत्ति के चश्ल रहने से उसमें अन्यान्य प्रतीतियों का भी मेल रहता है।

अतः समाधत्स्व यतेन्द्रियः सदा निरन्तरं शान्तमनाः प्रतीचि ।

विध्वंसय ध्वान्तमनाद्यविद्या कृतं सदेकत्वविलोकेन ॥1367

इसलिए सदा संयतेन्द्रिय होकर शान्त मन से निरन्तर प्रत्यगात्मा ब्रह्म में चित्त स्थिर करे और सच्चिदानन्द ब्रह्म के साथ अपना ऐक्य देखते हुए अनादि अविद्या से उत्पन्न अज्ञानान्धकारका ध्वंस करो ।

योगस्य प्रथमं द्वारं वाङ्मनोरोधोऽपरिग्रहः ।

निराशा च निरीहा च नित्यमेकान्तशीलता ॥1368

वाणी को रोकना, द्रव्य का संग्रह न करना, लौकिक पदार्थों-की आशा छोडना, कामनाओं का त्याग करना और नित्य एकान्त में रहना-ये सब योग का पहला द्वार हैं।

एकान्तस्थितिरिन्द्रियोपरमणे हेतुर्दमश्वेतसः ।

संरेधे करणं शमेन विलयं यायादहंवासना ।

तेनानन्दरसानुभुतिचला ब्राह्मी सदा योगिन-

स्तस्माच्चित्तनिरोध एव सततं कार्यः प्रयत्नान्मुनेः ॥1369॥

एकान्त में रहना इन्द्रिय-दमन का कारण है, इन्द्रिय-दमन चित्त के निरोध का कारण है और चित्त-निरोध से वासना का नाश होता है तथा वासना के नष्ट हो जाने से योगी को ब्रह्मानन्दरस का अविचल अनुभव होता है; इसलिए मुनि को सदा प्रयत्नपूर्वक चित्त का निरोध ही करना चाहिए।

वाचं नियच्छात्मनि तं नियच्छ बुद्धौ धियं यच्छ च बुद्धिसाक्षिणि ।

तं चापि पूर्णात्मनि निर्विकल्पे विलाप्य शान्तिं परमां भजस्व ॥1370॥

वाणी को मन में लय करो, मन को बुद्धि में और बुद्धि को बुद्धि के साक्षी आत्मा, में तथा बुद्धि-साक्षी (कुट्स्थ) को निर्विकल्प पूर्णब्रह्म में लय करके परम शान्ति का अनुभव करो।

देहप्राणेन्द्रियमनोबुद्ध्यादिभिरुपाधिभिः ।

बैर्यैर्वृत्तेः समायोगस्तत्तद्वावोऽस्य योगिनः ॥1371॥

देह, प्राण, इन्द्रिय, मन, और बुद्धि इन उपाधियों में से जिस-जिस के साथ योगी की चित्त-वृत्ति का संयोग होता है उसी-उसी भाव की उसको प्राप्ति होती है।

तन्निवृत्त्या मुनेः सम्यक्सर्वोपरमणं सुखम् ।

संदृश्यते सदानन्दरसानुभवविप्लवः ॥1372॥

जब उस मुनि का चित्त इन सब उपाधियों से निवृत्त हो जाता है तो उसको पूर्ण उपरति का आनन्द स्पष्टतया प्रतीत होने लगता है जिससे उसके चित्त में सच्चिदानन्दरसानुभव की बाढ़ आने लगती है।

**समाधि के लिए अन्तरंग- बहिरंग त्याग**

अन्तस्त्यागो बहिस्त्यागो विरक्तस्यैव युज्यते ।

त्यजत्यन्तर्बहिः सङ्गं विरक्तस्तु मुमुक्ष्या ॥1373॥

विरक्त पुरुष का ही आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार का त्याग करना ठीक है। वही मोक्ष की इच्छा से आन्तरिक और बाह्य संग को त्याग देता है।

बहिस्तु विषयैः सङ्गं तथान्तरहमादिभिः

विरक्त एव शक्नोति त्यकुं ब्रह्मणि निष्ठितः ॥1374॥

इन्द्रियों का विषयों के साथ बाह्य संग और अहंकारादि के साथ आन्तरिक संघ- और इन दोनों का ब्रह्मनिष्ठ विरक्त पुरुष ही त्याग कर सकता है।

वैराग्यबोधौ पुरुषस्य पक्षीयत् पक्षौ विजानीहि विचक्षणत्वम् ।

विमुक्तिसौधाग्रतलाधिरोहणं ताभ्यां विनानान्यतरेण सिद्ध्यति ॥1375॥

हे विद्वान् ! वैराग्य और बोध इन दोनों को पक्षी के दोनों पंखों के समान मोक्षगामी पुरुष के पंख समझो। इन दोनों में से किसी भी एक के बिना केवल एक ही पंख के द्वारा कोई मुक्तिरूपी महल की अटारी पर नहीं चढ़ सकता ( अर्थात् मोक्ष प्राप्ति के लिए वैराग्य और बोध दोनों की ही आवश्यकता है। )

अत्यन्तवैराग्यवतःसमाधिः समाहितस्यैव दृढप्रबोधः ।

प्रबुद्धतत्त्वस्य हि वन्धमुक्ति- मुक्तात्मनो नित्यसुखानुभूतिः ॥1376॥

अत्यन्त वैराग्यवान् का ही समाधि-लाभ होता है, समाधिस्थ पुरुष को ही दृढ़ बोध होता है तथा सुदृढ़ बोधवान् का ही संसार बन्धन छूटता है और जो संसार-बन्धन से छूट गया है और उसी को नित्यानन्द का अनुभव होता है।

वैराग्यान्नं परं सुखस्य जनकं पश्यामि वशयात्मन-

स्तच्चेच्छुद्धतरात्मबोधसहितं स्वाराज्यसामाज्यधुक् ।

एतद्वारामजस्मुक्तियुवतेर्यस्मात्त्वमस्मात्परं

सर्वत्रास्पृह्या सदात्मनि सदा प्रज्ञां कुरु श्रेयसे ॥1377॥

जितेन्द्रिय पुरुष के लिए वैराग्य से बढ़कर सुख दायक मुझे और कुछ भी प्रतीत नहीं होता और वह यदि कहीं शुद्ध आत्मज्ञान के सहित हो तब तो स्वर्गीय साम्राज्य के सुख का देने वाला होता है। यह मुक्ति रूप कामिनी का निरन्तर खुला हुआ द्वार है; इसलिए हे वत्स ! तुम अपने कल्याण के लिए सब ओर से इच्छा रहित होकर सदा सच्चिदानन्द ब्रह्मा में ही अपनी बुद्धि स्थिर करो।

आशां छिन्धि विषोपमेषु विषयेष्वेषैव मृत्योः मृत्यि-

स्त्यक्त्वा जातिकुलाश्रमेष्वभिमतिं मुश्चातिदूरात्क्रियाः

देहादावसति त्यजात्मधिषणां प्रज्ञां कुरुत्वात्मनि

त्वं द्रष्टास्यमलोऽसि निर्व्यपरं ब्रह्मासि यद्वस्तुतः ॥1378॥

विष के समान विषम विषयों की आशा को छोड़ दो, क्योंकि यह ( स्वरूप विमृतिरूप ) मृत्यु का मार्ग है तथा जाति कुल और आश्रम आदि का अभिमान छोड़कर दूर कर्मों को नमस्कार कर दो। देह आदि असत् पदार्थों में आत्मबुद्धि को छोड़ो और आत्मा में अहंबुद्धि करो, क्योंकि तुम तो वास्तव में इन सब के द्रष्टा और मल तथा द्वैत से रहित जो परम ब्रह्म है वही हो।

लक्ष्ये ब्रह्मणि मानसं दृढतरं संस्थाप्य बाहोन्द्रियं

स्वस्थाने विनिवेश्य निश्लतनुशोपेक्ष्य देहस्थितिम् ।

ब्रह्मात्मैक्यमुपेत्य तन्मयतया चाखण्डवृत्त्यानिशं

ब्रह्मानन्दरस पिबात्मनि मुदा शून्यैः किमन्यैर्भ्वमैः ॥३७९

चित्त को अपने लक्ष्य ब्रह्म में दृढ़ता पूर्वक स्थिरकर बाह्य इन्द्रियों को (उनके विषयों से टहटाकर) अपने-अपने गोलकों में स्थिर करो, शरीर को निश्चल रखो और उसकी स्थिति की ओर ध्यान मत दो। इस प्राकर ब्रह्म और आत्मा की एकता करके तन्मयभाव से अखण्ड-वृत्ति से अहर्निश मन-ही-मन आनन्दपूर्वक ब्रह्मानन्दरस का पान करो और थोथी बातों से क्या लेना है?

अनात्मचिन्तनं त्यक्त्वा कश्मलं दुःखकारणम् ।

चिन्तनमः त्मानमानन्दरूपं यन्मुक्तिकारणम् ॥३८०

दुःख के कारण और मोह रूप अनात्म-चिन्तन को छोड़कर आनन्दस्वरूप आत्मा का चिन्तन करो, जो साक्षात् मुक्ति का कारण है।



## आचार्य कनकनन्दी जी के विविध ग्रन्थ पृष्ठ-लाल

### (I) आध्यात्मिक

1) अनेकान्त सिद्धान्त (द्वि.सं.)	41 (11) विश्व प्रति विश्व एवं स्वाम-विस्त
2) अहिंसामृतम्	15 (12) वैज्ञानिक आईन्स्टीन के सिद्धान्तों को पुनः परीक्षण की आवश्यकता । 15
3) अनेकान्त के प्रकारश में मोक्षमार्ग	21
4) अपुनरागमन पथः मोक्षमार्ग	05 (III) आध्यात्मिक मनो-विज्ञान
5) आदर्श नागरिक की प्रायोगिक क्रियायें	05 (1) अतिमानवीय शक्ति (द्वि. सं.) 21
6) आहार दान से अभ्युदय	9 (2) क्रान्ति के अग्रदूत (द्वि. सं.) 21
7) उपवास का धार्मिक वैज्ञानिक विश्लेषण 15	(3) कर्म का दाशनिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण (द्वि. सं.) 45
8) जीवन्त धर्म सेवा धर्म	11
9) तत्त्वानुचिन्तन	5 (4) ध्यान का वैज्ञानिक विश्लेषण (द्वि. सं.) 21
10) दिगम्बर साधु का नग्नत्व एवं केशलोंच (हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दू (11सं.)	(5) लेश्य मनोविज्ञान (द्वि. सं.) 11
11) धर्म, जैन धर्म तथा भ. महावीर	5 (IV) शिक्षा-मनोविज्ञान
12) बन्धु बंधन के मूल	25 (1) आचार्य कनकनन्दी दृष्टि में शिक्षा 11
13) विनय मोक्ष द्वारा	41 (2) नैतिक शिक्षा एवं सामान्य ज्ञान 40
14) विश्व धर्म सभा (समोवशारण)	6 (3) सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान (बृहत्) 201
15) क्षमा वीरस्य भूषणम् (तृ.सं.)	21 (4) सर्वोदयशिक्षामनोविज्ञान (छोटा) 21
16) श्रमण संघ संहिता	25 (V) शोध (धार्मिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक)
17) त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्य (द्वि. सं.)	30
(II) आध्यात्मिक-विज्ञान (गणित)	25 (1) अग्नि परीक्षा 11
1) अनन्त शक्ति सम्पन्न परमाणु से लेकर परमात्मा	(2) अनुभव चिन्तामणि 10
2) धर्म विज्ञान बिन्दु	(3) ऊठे ! जागो ! प्राप्त करो 11
3) धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका-(पु.1)सं.सं.15	(हिन्दी, कन्नड) 11
4) धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका-(पु.2)ष.सं.15	15 (4) करें साक्षात्कार यथार्थ सत्य का 50
5) धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका-(पु.3)ष.सं.15	(5) करें साक्षात्कार यथार्थ 40
6) धर्म दर्शन एवं विज्ञान (द्वि.सं.)	6) जैन धर्मावलम्बी संख्या और उपलब्धि 21
7) ब्रह्माण्डीय जैविक-भौतिक एवं रसायन विज्ञान-	51 (7) जीव विकास एवं विनाश के सूत्र 10
8) ब्रह्माण्ड के रहस्य	8) जैन धर्मावलम्बियों की दिशा-दशा-आशा 5
9) ब्रह्माण्ड एवं प्रतिब्रह्माण्ड धार्मिक वैज्ञानिक विश्लेषण-	125
10) धार्मिक कुरीतियों का परिशोधन	25 (9) जैन एकता एवं विश्व शान्ति 5
11) नम सत्य का दिग्दर्शन	15 (10) धार्मिक कुरीतियों का परिशोधन 5

{110}

12) निकृष्टतम् स्वार्थी तथा क्रूरतम् प्राणी मनुष्य	10	(36) वर्तमान की आवश्यकता धार्मिक उदारता न कि कद्ग्रता	15
13) प्रथम शोध बोध-आविष्कार एवं प्रवक्ता-	25	(VI) अनुवाद, टीका, समीक्षा (आध्यात्मिक विज्ञान)	
14) प्राचीन भारत की 72 कलायें	11	(1) इष्टोपदेश (आध्यात्मिक- मनोविज्ञान)	51
15) भ्रष्टाचार उन्मूलन	5	(2) पुरुषार्थसिद्धयुपाय	
16) भारत को गारत एवं महान् भारत बनाने के सूत्र	5	(अहिंसा का विश्वस्वरूप)	101
17) भारत के सर्वोदय के उपाय	5	(3) विश्व द्रव्य-विज्ञान (द्रव्य संग्रह)	41
18) मानवीय निकृष्ट संघर्ष का इतिहास	10	(4) स्वतंत्रता के सूत्र	
19) मेरा लक्ष्य-साधना एवं अनुभव	10	(मोक्ष शास्त्र) द्वि. सं.	101
20) ये कैसे धर्मात्मा, निव्यसनी- राष्ट्र सेवी	11	(5) सत्यसाम्यसुखामृतम्	
21) व्यसन का धार्मिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण (तृ. सं.)	11	(प्रवचनसार)	301
22) विज्ञान को भी अविज्ञात सत्य	30	(VII) मीमांसा, समालोचना, संकलन	
23) शाश्वत समस्याओं का समाधान	20	(1) कौन है विश्व का कर्ता- हर्ता-धर्ता?	11
24) शिक्षा, संस्कृति एवं नारी गरीबा	18	(2) ज्वलन्त शंकाओं का शीतल	
25) संगठन के सूत्र (द्वि. सं.)	16	समाधान (द्वि. सं.)	41
26) संस्कार (हिन्दी, गुजराती, मराठी, कन्नड़) 15 वां. सं.	25	(3) जिनार्चना पुष्ट-1 (तृ. सं.)	41
(27) संस्कार (बृहत्)	10	(4) जिनार्चना पुष्ट-2	21
(28) सत्यान्वेषी आ. कनकनन्दी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व	5	(5) निमित्त उपादान मीमांसा (द्वि. सं.)	7
(29) संस्कृति की विकृति	10	(6) पुण्य पाप मीमांसा (द्वि. सं.)	15
(30) संस्कार और हम	25	(7) पूजा से मोक्ष, पुण्य, पाप भी	21
(31) हिंसा की प्रति क्रिया है प्राकृतिक प्रकोपादि	5	(8) भाग्य एवं पुरुषार्थ	
(32) क्षमा वीरस्य भूषणम् (तृ. सं.)	21	(हिन्दी, मराठी) पं. सं.	15
(33) विभिन्न क्रम विकासवाद एवं परम आध्यात्मिक विकासवाद	25	(9) शोधपूर्ण ग्रन्थ तथा ग्रन्थ कर्ता	
(34) भारत की अन्तरंग खोज	10	आ. कनकनन्दी-	10
(35) विभिन्न भावात्मक प्रदूषण एवं भ्रष्टाचार: कारण तथा निवारण	25	(VIII) इतिहास	
	21	(1) अशोध्या का पौराणिक, ऐतिहासिक एवं राजनैति विश्लेषण	11
	25	(2) क्रष्ण पुत्र भरत से भारत (द्वि. सं.)	21
	10	(3) धर्म प्रवर्तक 24 तीर्थकर (द्वि. सं.)	21
	15	(4) पार्श्वनाथ का तपोपसर्ग कैवल्य	
		धाम विजौलिया 15	

{111}

(5) भारतीय आर्य कौन कहाँ से - कब से कहाँ के?	25	(3) भ. महावीर तथा उनका दिव्य संदेश	5
(6) युग निर्माता भ. क्रष्णभद्रेव (द्वि. सं.)	41	(4) भारत को पुनः विश्वगुरु बनाने के लिए समग्र क्रान्ति चाहिए	11
(7) युग निर्माता भ. क्रष्णभद्रेव (पद्यानुवाद)	5	(5) मनन एवं प्रवचन	5
(8) विश्व इतिहास	25	(6) विश्व शान्ति के अमोघ-उपाय (द्वि. सं.) 10	
(IX) स्मारिका (वैज्ञानिक संगोष्ठी)		(7) विश्व धर्म के दस लक्षण	41
(1) कर्म सिद्धान्त और उसके वैज्ञानिक मनोविज्ञान एवं सामाजिक आयाम-	60	(8) व्यक्ति एवं समाज निर्माण के आद्य कर्तव्य	15
(2) शिक्षा-शोधक-स्मारिका-	100	(9) शान्तिक्रान्ति के विश्वनेबनने के उपाय	41
(3) स्मारिका (स्वतंत्रता सूत्र में विज्ञान)	81	(10) समग्र क्रान्ति के उपाय	15
(4) स्मारिका (स्वतंत्रता के सूत्र में विज्ञान)	51	(11) सत्य धर्म	5
(5) जैन धर्म में विज्ञान	150	(XIII) कथा	
6) भारतीय संस्कृति में विश्व शान्ति और पर्यावरण सुरक्षा के सूत्र	20	(1) कथा सुमन मालिका	15
(X) स्वप्न (शकुन-भविष्य विज्ञान) मंत्र सामुद्रिक शास्त्र (शरीर से भविष्य ज्ञान)		(2) कथा सौरभ	21
(1) भाव-भाग्य तथा अंग-विज्ञान		3) कथा पारिजात	15
(सर्वांग विज्ञान की वैज्ञानिक गवेषणा)	151	4) कथा पुष्पाज्जली	15
(2) भविष्य फल विज्ञान (द्वि. सं.)	101	5) कथा चिन्तामणि	15
(3) मंत्र-विज्ञान (द्वि. सं.)-	25	6) कथा त्रिवेणी	8
(4) शकुन-विज्ञान	30	(XIV) अंग्रेजी शाहित्य	
(5) स्वप्न-विज्ञान (द्वि. सं.)	51	1) Fate and efforts	15
(XI) स्वास्थ्य विज्ञान		2) Leshya Psychology	11
(1) समग्र स्वास्थ्य के उपाय: तपस्या	25	3) Moral Education	25
(2) आर्दश विचार-विहार-आहार	35	4) Nakedness of Digambar Jain Saints and Kesh Lonch	5
(3) धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान (पु. 1) तृ. सं.	50	5) SansKaras	5
(4) धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान (पु. 2)	21	6) Sculopr the Rishabhadev	51
(5) शारीरीक-मानसिक-आध्यात्मिक स्वास्थ्य के विविध आयाम	101	7) Philosophy of Scientific religion	21
(XII) प्रवचन		8) What kinds of Dharmatma (piousman) these are	21
(1) क्रान्ति दृष्टा प्रवचन	11	(XV) डॉ. एन. एल. कछारा के शाहित्य (संस्थान के शविव)	
(2) जीने की कला	7	(1) जैन कर्म सिद्धान्त: आध्यात्म और विज्ञान	

**(XIV) प्रकाशनार्थी तैयार**

(1) अमृतत्व की उपलब्धि के

हेतु समाधि - मरण, पृष्ठ

(2) ब्रह्माण्ड - काल - आकाश

एवं जीवः अनन्त, -पृष्ठ

(3) विश्व के परम विचित्र प्राणीः

मानव, -पृष्ठ

(4) पंचविध एकेन्द्रिय जीव, -

पृष्ठ-

(5) विविध दीक्षा विधि, - पृष्ठ -

(6) परोपदेश कुशल बहुतेरे, पृष्ठ -

(XVI) आगामी प्रकाशनाधीन ग्रंथ

(1) न्याय, राजनीति, अर्थ शास्त्र,

समाजविज्ञानः (नीति वाक्यमृतम् की विस्तृत

वैज्ञानिक समीक्षात्मक टीका)

पृष्ठ संख्या लगभग 1000

(2) भारत का दिव्य संदेश : भारत की मूल

परंपरा व्यथा- जैन, बौद्ध, वैदिक के श्रेष्ठ गंथों

की आधुनिक समीक्षात्मक टीका सहित।

समाधिशतक (जैन), उपनिषद (वैदिक),

धर्मपद (बौद्ध) तीन गंथों का प्रकाशन एक ही

जिल्द में किया जायेगा जिससे विश्व के लोग

भारत के दिव्य आध्यात्मवाद को समझे एवं

भावात्मक एकता के सूत्र में बैंधे। पृष्ठ लगभग

500 से 750 तक।

4) परम्परा, धर्म एवं विज्ञान : परम्पराओं में

धर्म क्या है? अधर्म क्या है? विज्ञान क्या है?

अविज्ञान क्या है? यह सिद्ध किया जायेगा।

पृष्ठ:प्रायः100

8) परम पर्यावरण वैज्ञानिक तीर्थकर एवं

पर्यावरण की सुरक्षा: इस कृति में यह सिद्ध किया

जायेगा कि केवल प्रदूषण वायु, जल, मृदा, शब्द

ही नहीं होता है बल्कि भावात्मक प्रदूषण सर्व

प्रदूषण का जनक है। विश्व के महान्‌तम प्रथम पर्यावरण वैज्ञानिक तीर्थकर होते हैं।

150 पृष्ठ प्रायः 400 से 500

10) कल्याणकारकः जैन आयुर्विज्ञान-

400 पृष्ठ प्रायः 1100 (वैज्ञानिक समीक्षा)

11) भाव ही कल्पवृक्ष, चिंतामणि, कामधेनु : इस कृति में यह सिद्ध किया जायेगा कि वस्तुतः चिंतामणि, कामधेनु, कल्पवृक्ष व्यक्ति के भाव

200 ही है। भावों का प्रभाव शरीर, मन, आत्मा,

50 समाज, प्रकृति, इहलोक- परलोक में किस

प्रकार पड़ता है इसका विस्तृत वर्णन धर्मिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से पृ. 200



28वाँ धर्म दर्शन विज्ञान प्रशिक्षण शिविर के उद्घाटन—सत्र की शोभायात्रा का एक दृश्य (पुनर्वास कॉलोनी, सागवाड़ा – 2006)



सर्व शिक्षा अभियान शिक्षण प्रशिक्षण शिविर में शिक्षक एवं अभिभावकों को "शिक्षा—शिक्षक—शिक्षार्थी एवं शिक्षाफल" के प्रवचन के एक दृश्य (केशरीयाजी – 2006)



न्यायालय में जज, वकील तथा नागरिकों के समक्ष प्राचीन एवं  
आधुनिक कानून के गुण-दोष के बारे में प्रवचन करते हुए आ. कनकनन्दी



किरीट दफतरी (अध्यक्ष जैना अमेरिका)  
डॉ. पारसमल अग्रवाल (पूर्व वैज्ञानिक अमेरिका)  
डॉ. प्रेमसुमन जैन, डॉ. नारायण लाल कच्छारा  
आदि आ. कनकनन्दी से चर्चा करते हुए।